महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या 101-200 तक

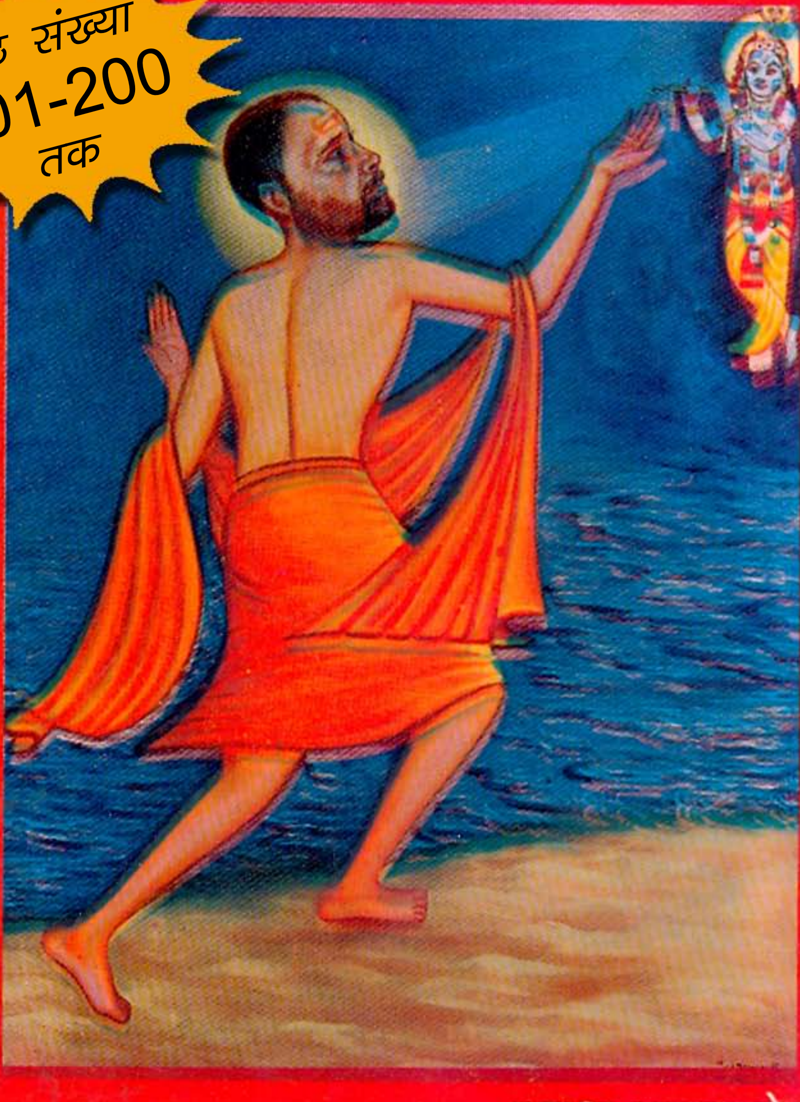

साधु कृष्णप्रेम

रासमण्डलीका पुनः आगमन

यद्यपि पू. गुरुदेवने रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजीको बिना बुलाये गोरखपुर आनेकी मनाही कर दी थी,परन्तु भगवद्विधानवश मण्डलीवाले पुनः गोरखपुर आगये। रासमण्डलीके ठाकुरके प्रति पू.राधाबाबाका विशिष्ट भाव था ही, अतः उनके आगमनका पत्र पाकर पू.गुरुदेवने उसे श्रीकृष्णनिकेतन जो गीतावाटिकाके निकट रेलवे–कालोनीमें स्थित था, वहाँ ठहराया।

श्रीकृष्णनिकेतनमें पू. गुरुदेवकी पूजा–अर्चनाके लिये श्रीपरमेश्वरजी फोगला (पू.पोद्दार महाराजके जामाता)ने ,जिनकी यह व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, बहुत सुन्दर पुष्पवनवाटिका निर्माण की थी।

ठाकुरस्वरूप बालक घनश्याम और अन्य ब्रजवासी बालकोंको यह स्थान ब०हुत ही सुखकर एवं मनोहर लगा। स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट जल एवं शीतल पुष्पगन्धवासित मन्द समीरने सभीके अंगोंकी यात्राके कारण हुई सारी थकान हर ली।

मण्डलीवालोंके नेत्रकोणोंमें विकसित पुष्पोंकी शोभा समा गयी। नाना–विधि कुसुमोंके सुवासने उनकी घ्राणेन्द्रियोंको कृतकृत्य कर दिया। मानो श्रीराधाबाबा ही उनके आनन्दसंवर्धन और स्वागतके लिये यह प्राकृत प्रेमपरिपूर्ण भेंट उन्हें दे रहे हों।

ठाकुर घनश्याम और ब्रजवासी बालकोंने उत्फुल्ल होकर वहाँकी सघन सुन्दतरुराजिपर दृष्टि डाली। बालकोंने देखा सर्वत्र ही शोभाका अम्बार लगा है। अरुणवर्ण कोमल पल्लवजालसे मण्डित हो रहे थे गगनस्पर्शी वृक्ष– समूह। अगणित फलसमूहों एवं पुष्पगुच्छोंके गुरुभारसे ये सभी अवनत हो रहे थे। मानो अपने भवनमें पधारे इन ब्रजवासी अतिथियोंके दर्शन पाकर ये वनवासी वृक्षगण मस्तकपर सँजोये पूजोपहार – फलपुष्पोंको उनके चरणसरोजोंमें निवेदन कर रहे हों। नमित होकर, अपनी शाखावलीसे विशेष अतिथियोंके पाद–पद्मोंकी सन्निकट धराका संस्पर्श करते हुए मानो ये मूक निवेदन कर रहे हों –'आओ, भक्तराज पोद्दार महाराज और श्रीराधाबाबाके अतिथिगण ! आओ, हमारा उपहार स्वीकार करो। जो हो, वृक्षावलियों और पुष्पवनवाटिकासे लदे

कृष्णनिकेतनकी शोभा अपने ब्रजवासी अतिथियोंको एक अनिर्वचनीय हर्षदान करने हेतु मानो मुसका रही हैं।

ब्रजवासी बालक तो बालक ही थे, बाल्यचञ्चलता उनका स्वभाव थी, अतः सभी बालमण्डली उस अति मनोहर वनराजि एवं फुलवारीपर मुग्ध हुई, अपने स्वभाववश वहाँ बालक्रीड़ा करने लगी। इसी समय गीतावाटिकासे गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको साथ लेकर पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा कृष्णनिकेतन पहुँच गये। दूरसे ही उनकी दृष्टि उन्मुक्त क्रीड़ा करते इन बालकोंपर पड़ी। पू. गुरुदेवको तो वह प्राकृत ब्रजवासी बालकोंकी मण्डली दिखलायी ही नहीं पड़ी। उन्हें तो गोपशिशुओंके साथ नये–नये क्रीड़ा–कौतुक करते नन्दनन्दन ही दृष्टिगोचर होरहे थे, जो अपने हाथों कूपसे जल खींच–खींचकर पौधोंको सींचनेकी क्रीड़ामें निरत थे। पू. गुरुदेव बालकोंकी स्वतंत्र, उन्मुक्त क्रीड़ामें कोई विघ्न न पड़े इस भावसे एक वृक्षकी ओट लेकर खड़े हो गये। "देखो, श्रीकृष्णका अभिनय करने वाले बालक घनश्यामको एक वृक्षमें लिपटी लता–वल्लरी पर विकसित एक सुन्दर कुसुम दिख गया है, और वह स्वयं उसे चयन करनेको आतुर हो उठा है। उसने उस कुसुमके साथ ही वृक्षपर लगे फलगुच्छको भी देख लिया है और अपने हाथों उस उच्चस्थित फलगुच्छको तोड़नेके लिये वह कुदान भर रहा है। उसने अपना दुकूल पुष्पों एवं फलोंसे पूर्ण भर लिया है फिर भी उसकी लालसा पुनः–पुनः जाग्रत हो रही है।"

पू.गुरुदेव अपने ब्रजवासी बालक बने प्राणाराध्य प्राणपतिके मुखचन्द्रसे झरती हुई सौन्दर्यसुधाका पानकर तन्मय हो रहे थे। " अहा ! उनकी घुँघराली कुन्तलराशि, उनका बालोचित चापल्य, उनकी स्वाभाविक चेष्टायें, उनका अपने सखाओंके साथ उन्मुक्त सम्भाषण नित्य नूतन सौन्दर्य–माधुर्यसे भरा है। क्षण–क्षणमें इनका लावण्य परिवर्धित होता है। क्यों न हो, जो रसस्वरूप हैं, जिन रस–सागरकी एक बूँद रससे अगणित विश्व–प्रपञ्चमें रसका संचार होता है, जिनकी रसकणिका पाकर विश्वके प्राणी आनन्दमत्तताका अनुभव करते हैं, वे आनन्दकन्द ही तो इन ब्रजवासी बालकोंके रूपमें एक–दो छींटे किनारेपर खड़े मुझपर बिखेर रहे हैं।"

पू. गुरुदेव बहुत कालतक अपने मानसमें न जाने क्या–क्या देखते रहे। पू. गुरुदेवने पास खड़े गोस्वामीजीको भी अपनी अँगुलियोंसे चुपचाप वहीं

खड़े रहनेका संकेत दे दिया । पू. गुरुदेवके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुधारा उनके कपोलोंसे होती बह रही थी । वे सोच रहे थे, सचमुच ही श्रीकृष्णचन्द्रसे, उनकी चिन्मय लीलासे सम्बद्ध किसी भी तत्वरहस्यको एक मात्र उनकी कृपावारिकी कणिका मात्रको ही सम्बल बनानेपर जाना जा सकता है। अचिन्त्य भावोंमें तर्कोंके लिये स्थान जो नहीं। श्रद्धापूत चित्तसे अनुशीलन करनेपर उनकी कृपाशक्ति सत्यको अपने-आप व्यक्त कर देगी। उसे जानकर अनुभव करके ही कोई कृतार्थ हो सकता है ।

इस प्रकार उन ब्रजवासी गोपबालकोंकी बालकोचित स्वाभाविक चपल बालक्रीड़ासे ही भावोद्दीपित एवं आलोकित-चित्त पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दिव्य रसपानमें आनन्दनिमग्न हुए बहुत कालतक भावविभोर रहे। सुदीर्घ काला-वधि पश्चात् जब पू. गुरुदेव संवरित हुए तभी श्रीगोस्वामीजीने रासमण्डलीवालोंको सूचित किया कि पू. राधाबाबा वहाँ आये हैं ।

गुणीजनलीला

शुभ्र ज्योत्स्नाका परिधान धारण किये निशासुन्दरीने गोरखपुरस्थित कृष्णनिकेतनमें आज अपनेको धन्यभाग्य अनुभव किया है। आसपास नीरव वनक्षेत्रमें सभी विहंगम शान्त शयित हैं। कृष्णनिकेतनकी गौएँ भी गंभीर निद्रामें निमग्न हैं। सुदूर रेलवेकालोनीके बने गृह-आवासोंमें आबाल-वृद्ध सभी निवासी सुखपूर्वक गंभीर निद्रामें अचेत हैं। मध्य निशा हो चुकी है। कृष्णनिकेतनसे कुछ ही दूरीपर स्थित गुड़धोइया नामक नालेके पंकमें खिले कमलकोश निमीलित हो जानेके कारण मधुकरवृन्द वहीं पूर्णतया बन्दी बन चुके हैं। कुमुदिनी अपनी अभिलषित वेलाका समागम पाकर अपने प्रियतम चन्द्रदेवका आनन निरखती अतिशय प्रफुल्लित हो रही है। ऐसे परम रसमय वातावरणमें आज पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी अभियोजनानुसार इस पूर्णतः एकान्त कानन-खण्डमें रासलीलाका आयोजन किया जा रहा है । लीलाके भावोंकी पवित्रता एवं गंभीरताको बनाये रखनेके लिये इस लीलाके अभिनीत होनेकी सूचना किसीको भी सार्वजनिक रूपमें नहीं दी गयी है । मात्र ग्यारह दर्शक ही इस अभिनयको निहारने वाले हैं । यह लेखकका सौभाग्य था कि वह इन

लीला-दर्शकोंमेंसे एक था।

पू.गुरुदेवने अपने मानसिक मानचित्रके अनुसार आज अभिनयमण्डपका निर्माण कराया है। वे आज मध्याह्नसे ही प्रबन्धकोंको निर्देश दे-देकर मण्डपनिर्माणमें निरत थे। मध्य रात्रिमें इस रासाभिनय-मण्डपको महाभाग चन्द्रदेवने अपनी सुधामयी ज्योत्स्नासे ऐसा परिस्नात किया है कि जिधर दृष्टि जाती है, उधर ही प्रतीत होता है, मानो सौन्दर्य अधिष्ठात्रीके कोषमें जितनी शोभा संचित है, सब-की-सब यहीं बिखेर दी गयी हो। पू. गुरुदेवने विशाल भूखण्डमें वन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन सभीकी यथाशक्य लघु अनुकृतियाँ निर्मित की हैं। सभी दर्शकोंको ऐसा जीवन्त अनुभव हो रहा है, मानो एक अनन्त अचिन्त्य सौन्दर्य-रस-समन्वित उदधि लहरा रहा हो, जिसका कहीं कोई न ओर हो एवं न ही कोई छोर हो। सचमुच चिदानन्दमय परब्रह्मकी प्रतिष्ठा – महामहेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलास्थलीका निर्माण जो हुआ है, वह तो उनके समान ही विभु होना ही चाहिये। लीलाके प्रारंभ होते ही द्वारपर ताला लग जाता है ।

अभिनयमण्डप वस्त्रोंसे ही बनाया गया है । बीचमें एक सुन्दर सिंहासन प्रिया-प्रियतमके विराजनेके लिये सुरचित है । रासमण्डपके चतुर्दिक् मणिदीपोंकी शोभाका अनुकरण करते विद्युद्दीप जगमगा रहे है। सभी समाजियोंको आज पू. गुरुदेवने पीत रेशमी वस्त्र दिये हैं । सभीके मस्तकोंमें सुन्दर कलगी-लगे साफे हैं। कलगीके रूपमें अनेक रासधारियोंने तो मयूरपिच्छ, अनेकोंने नीलकण्ठ पक्षीके पंख और कुछने बगुला जलपक्षीके पंख धारण किये हैं। प्रायः अधिकांश श्रृंगारसामग्री मथुरासे किसी व्यक्तिको भेजकर मँगायी गयी है। समाजियोंमें मुख्य कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी सारंगी लिये हैं। मंडलीके स्वामी श्रीरामजी हारमोनियममें सुर दे रहे हैं, एक समाजी मृदंग मिला रहा है, और कुछ पीछे कीर्तन करनेवाले झाँझ लिये हैं । सहसा श्रीहरिवल्लभजी अत्यन्त सुमधुरस्वरमें सारंगीवाद्यमें सुर भरते हुए गाने लगते हैं–

अंकस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापं हा मोहनेति मधुरं विदधन्यकस्मात् ।
श्यामानुरागमदविह्वल मोहनांगी श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि।।

देवभाषा संस्कृतमें वन्दनाके साथ धीरे-धीरे रासाभिनयका मखमली रेशमी पर्दा शनैः-शनैः अपसर्पित होता है। सभी दर्शक प्रिया-प्रियतमकी अतिशय दिव्य झाँकीका छवि-दर्शनकर किसी दूसरे ही अनिर्वचनीय लोकमें पहुँच जाते हैं। स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्य लीला-महाशक्ति ही

तो उनकी समस्त लीलाओंकी सूत्रधार हैं । वे ही तो उनकी प्रियाके भी महाभाव-सुधासागरकी एकमात्र नियंत्रिका हैं । वे ही उनकी एक-एक भावोर्मियोंपर भी नियंत्रण करती हैं । श्रृंगाररसकी कौनसी पयस्विनी कब किस रंगमंचपर उफनेगी, कहाँ अपने प्राण-प्रियतम रसराज श्यामसुन्दरसे संगमित होगी, किस संगमपर, किस माधुर्यतीर्थपर उन्हें आज स्नान कराना है– इस सबकी पूरी अनुक्रमणिका तो उन्हींके पास रहती है। अपनी इच्छानुसार अपने निर्दिष्ट क्रमसे वे श्रीकृष्णचन्द्रको महाभावसागरकी लहरोंपर बहाती हुई किस संगमपर ले जावेंगी, श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ कितनी सीमातक डुबावेंगी, अथवा परिस्नात करावेंगी और वे महाकृपालु रसिकवर न जाने क्यों, कैसे, एवं कब इस श्रृंगाररससुधाके एक-दो छींटे अथवा फुहारें अपनी अपार कृपासे किनारेपर खड़े सांसारिक जीवोंपर बिखेर देंगे – इसका किसे ज्ञान है ? इन्हीं विन्दुओंकी रस-छायासे तो प्रपंच-जगत् के श्रृंगारस्रोतमें रसका संचार अनादि कालसे होता रहा है, एवं अनन्त कालतक होता रहेगा। यह मायिक श्रृंगार-स्रोत भी कभी सूख नहीं पाता है। आज इन्हीं लीला-महाशक्तिके दर्शक बने पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा, पू. पोद्दार महाराज और अन्य उनके चरणावलम्बी अनुगत जीवोंके हृदयकी भावधाराको इस महाभावसागरसे संगमित करना है। लीलामहाशक्तिको प्रत्येक दर्शकके हृदयकी भाव-सुपात्रताका पूरा-पूरा परिज्ञान है । ये लीलामहाशक्ति यह भी भलीभाँति जानती हैं कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा जहाँ प्रिया-महाभाव-वारिधिके ठीक किनारेपर खड़े हैं और प्रपंचका पूर्णतया त्यागकर बस किसी भी ज्वार-लहरमें डूबनेको सन्नद्ध हैं, वहाँ पू. पोद्दार महाराज पूर्ण रसिक रसराजसिन्धु बने लहरा रहे हैं; और शेष उनके चरणाश्रित जन यद्यपि अभी विषयपंकमें ही रचे-पचे डूबे हैं, परन्तु वे सभी हेतुरहित कृपा-कणिकाका दान पानेके तो अवश्य ही याचक हैं । अतः लीलामहाशक्ति ऐसा मंच निर्माण करती हैं, जिससे प्रत्येक अपनी-अपनी योग्यतानुसार इस पवित्र लीलारससुधाका मुक्त आस्वादन कर पावे । अतः वे क्रमशः सबके लिये विलक्षण रसरीतिसे कपाट उन्मुक्त करनेका प्रावधान करती हैं ।

ज्योंही रासमञ्चका परदा उठता है, दर्शक देखते हैं– श्रीकृष्णचन्द्र अपनी प्रिया राधारानीके अंकमें विराजित हैं। प्रियतम श्यामसुन्दरके नेत्र अपनी प्रियाकी आनन-छवि निरखनेमें पूर्णतया निरत हैं। यद्यपि प्रियतम निज प्रियाके अंकमें ही लेटे हैं, तदपि प्रिया–"हा प्राणवल्लभ ! " कहकर उन्मत्त प्रलाप कर

रही हैं । वे अनुरागमदमें पूर्णतया विह्वल हैं। उनकी विलक्षण प्रेमशोभा देखते ही सभी दर्शक अश्रु बहाने लगते हैं ।

सभी रासमण्डलीके समाजी यह देखकर विस्मित हैं कि प्रथम छवि-दर्शनके साथ ही श्रीपोद्दार महाराजके नेत्रोंसे तो ऐसी अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है मानो उनके नेत्र नहीं, कोई दो लघुत्तम जलधरखण्ड रसवर्षा कर उठे हों । इधर पू. गुरुदेव यद्यपि जागरूक हैं , परन्तु उनके पार्श्वमें बैठे गोस्वामी चिम्मनलालजी सिसकियाँ भर रहे हैं । रासके समाजियोंने इन प्रमुख दर्शकोंकी ऐसी विलक्षण भावदशा देखकर एक बार तो रासमञ्चका परदा ही डाल देना उचित समझा। मात्र अकेली इस अभिनव रसझाँकीके साथ ही परदा गिर जाता है । कुछ काल पश्चात् जब श्रीगोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी संवरित होते हैं, तो रासलीला पुनः प्रारंभ होती है।

पुनः परदा धीरे-धीरे सरकता है। इस बार दर्शक देखते हैं, दोनों युगलस्वरूप प्रिया-प्रियतम सिंहासनपर गलबैयाँ दिये विराजित हैं। अहा ! इन युगल दम्पतीका सौन्दर्य कितना मोहक है, दर्शकगण थकितनेत्र हो उठते हैं। पलकें प्राकृत नियमानुसार गिरना चाहती हैं, परन्तु दर्शन-लालसामें अवरोध न आवे, इसलिये मन उन्हें बरबस गिरने नहीं देना चाहता। मन मुग्ध है।"अहा! प्रियाजी बने इस बालककी इतनी सघन कुन्तल राशि !, कुन्दनद्युति आननसरोजपर बिखरी अलकावलीकी लघु-लघु लटें, विशाल नेत्र, वह मृदु मुसकान, मधुस्रावी अधरयुग्म, ललित चंचल भंगिमायें– जो निहार रहे थे, वे ही अनुभव कर रहे थे कि उस निशामें कैसी विलक्षण शोभाराशि उस रासमंचमें उमड़ी थी।

समाजी गा रहे थे। मृदंगमें कहरवा ताल बज रहा था। परम सुरीली झाँझें झंकृत होरही थीं। प्रमुख गायक श्रीहरिवल्लभजीका सुर अतिशय मधुर था।

बैठी सिंहासन हित-जोरी ।
जिहिं लखि लाजत काम करोरी।।
अनुपम छवि ललितादि निहारैं ।
होत मगन तनमनधन वारैं।।
तत्सुख भाव विचारत रहैं ।
जातैं प्रिया-पीव सुख लहैं।।

अहा ! स्वर और शोभा दोनोंने मिलकर वातावरणको जीवन्त, सरस कर दिया था। इसी समय अनेक ब्रजसुन्दरियाँ रंगमंचपर उपस्थित होती हैं और परस्पर गायनमें ही वार्ता करती चौपाईछन्दमें कहती हैं :–

रचैं छद्म सब मिलि मन आई। लाल-प्रिया जिहिं जान न पाई।।

प्रथम ब्रजांगना–" (ब्रजभाषा गद्यमें) हे सखियों ! आज मेरे मनमें एक नवीन उत्कण्ठा उदित भई है। आज तौ कोई अतिशय नवीन छद्म हम सब मिलिकैं रचैं, जाकूँ प्रिया-प्रियतम परख ही न सकैं । "

द्वितीय ब्रजांगना–" हाँ बीर ! तेरी राय तौ अतिशय सुखकारी है ! ये दोनों प्रिया-प्रियतम तौ हमें सदा ही अपनी लीलान तैं भ्रमित राखैं हैं । आज हम ऐसी लीला-रचना करैं , ऐसौ नवीन रसमय भेष धारण करैं कि ये दोनों हू भूलनमें परि जावैं ! "

तीसरी ब्रजांगना–" हाँ, हाँ री सखी ! पहिलैं प्यारी रानीसौं कोऊ सेवा करवेकी आग्या लै कुंजनमें प्रवेश कर छद्म भेष तो बनावैं ।

(तीनों ब्रजांगना सिंहासनमें बैठे प्रिया-प्रियतमके निकट जाती हैं) समाजी गाते हैं:-

चौपाई

अस बिचारि करि हियैं दृढाई । पहुँचि प्रिया ढिंग बिनय सुनाई ।।

तीनों ब्रजांगनायें (गायनमें)

जो प्यारी निदेस हम पावैं । तौ चुनि कुसुम हार पहनावैं।।
रचना हार अनौखी करिहैं । पहिरैं आज हियौ छकि जैहैं।।

(अर्थ)

"अहो ! हमारी प्राणसखी ! तुम्हारी बलिहारी है ! यदि आपकी अतिशय सुखकारी सम्मति होय तौ हम सभी सखीगण आज आपकी कुञ्जवाटिकासौं पुष्पचयन कर लावैं और आप दोनों प्रिया-प्रियतम कौं नयौ प्रकारकौ पुष्पश्रृंगार रचकर पहनावैं । हम सभीकी आज यही कामना है कि आप दोनों प्रिया-प्रियतम पुष्पश्रृंगार धारणकर पुष्पमहलमें पुष्पशय्यामें पौढौ । "

पू.गुरुदेव रासलीला क्या देखरहे थे, उनके तो रोम-रोमसे आनन्द झर रहा था। पू. पोद्दार महाराजकी भी अद्भुत विचित्र दशा थी। इन दोनोंके सम्मुख तो साक्षात् स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन ही अपनी प्रिया रासेश्वरी सहित विस्मित कर देनेवाली लीला कर रहे थे। राधा-प्राणधन ! प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र!

बलिहारी है, तुम्हारी मुनिमनहारिणी निजमनमोहिनी, भक्तसर्वस्वदायिनी लीलाकी! भक्त-वात्सल्यका ऐसा निदर्शन तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कर सकता है ?

लेखक इस लीलादर्शनके समय इन तीनों महापुरुषों (पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा ,श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी) के निकट ही बैठा था । वह इन तीनोंकी विचित्र प्रेमदशा निरख-निरखकर चकित था। उनके मनोराज्यमें प्रवेश पाना तो उसके वशकी बात नहीं थी। फिर वह उनकी इस विचित्र भाव-दशाका रहस्य कैसे जाने ? उसने धीरेसे अपने मामा श्रीचिम्मनलालजीसे प्रश्न भी किया,"मामाजी ! क्या आपको भगवद्दर्शन हो रहे हैं ? परन्तु वे बताते भी कैसे ! वे तो दूसरे ही लोकमें थे। कभी लेखकके अतिशय हिलानेसे अपने प्राकृत देहको पकड़ते तो अपने कण्ठको अतिशय भावरुद्ध पाकर बोल ही नहीं पाते। लेखकको कुछ भी बतानेमें असमर्थ हो जाते। रासलीलाका क्रम आगे बढ रहा था।

समाजी गा रहे थेः–

चौपाई

सहज प्रिया आज्ञा करि दीनी। चली तुरत उर अति सुख भीनी।।
सखियन अस बिचारि मन कीनौ । रचौ खेल कोऊ रसभीनौ।।

(पटाक्षेपमें)

अपनी प्राणसखीसे सहज ही अनुमति पाकर सखियाँ अतिशय सुखमें भरीं तुरन्त ही कुञ्जवाटिकामें प्रविष्ट हो जाती हैं। वे अपने प्राणसारसर्वस्व प्रिया-प्रियतमको रिझानेके लिये नटकला करनेवाले गुणीजनोंका वेष धारण करती हैं।

इधर लीलामंचमें अपनी प्रियाके प्रेममें अतिशय मुग्ध ठाकुर उन्हें सम्बोधित करता गाता हैः–

(श्रीहरिवल्लभजीकी अँगुलियाँ सारंगी वाद्यमें अतिशय सरस सुर भरती थिरक उठती हैं । राग मालकौंस मानो मूर्तिमान् प्रकट हो जाता है। मृदंगमें तीन ताल बज उठती है)

ठाकुर –(अपनी प्रिया श्रीराधारानीके चिबुकको संस्पर्शित करते हुए)

तुव मुख कमल , नैन अलि मेरे , राधे !
पलक न लगत, पलक बिनु देखैं , अरबरात अति फिरत न फेरे, राधे !!
पान करत मकरन्द रूप-रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे राधे !

'भगवत रसिक' भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे राधे !!

ओह ! ठाकुरके 'मधुमय कण्ठके इस संगीतमें कोई मोहन-मंत्र भरा था। पू. गुरुदेव लोकातीत रसमें आपाततः निमग्न थे। मैं उनके रसमुग्ध मुखकी ओर एकटक देख रहा था। कभी श्रीपोद्दार महाराजके भावसमाधिस्थ आननपर मेरी दृष्टि जम जाती। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो इन युग्म हृदयोंमें अनन्त पारावारं-रहित रससिन्धु है, उसमें कभी नीलवर्णकी और कभी विद्युल्लताप्रभ कनकवर्णकी तरंगें उठ रही हैं। प्रत्येक तरंग मेरे प्राणोंमें समाकर कह रही है—'अरे ! अरे !! भाग्यवान् ! ये हृदय-द्वय प्रिया-प्रियतमके रसपूर आवास हैं, इनमें अन्य कोई प्रवेश ही नहीं कर सकता। ' अहो ! मेरे स्वयंके नेत्र भी रसनिमीलित हो उठे। अपना समस्त धैर्य बटोरकर मैं पुनः लीलादर्शन करने लगता हूँ।

अपने प्रियतमके प्रेमनिवेदनका प्रत्युत्तर प्रिया राधारानी दे रही हैं। प्रियतमने जहाँ मालकौंस रागमें आलाप किया था, वहाँ प्रियारानी अपनी कोकिलकण्ठी ध्वनिमें जोगकौंस रागमें प्रत्युत्तर देती है। मृदंग त्रितालमें गमक रही है :—

नैननि ही में राखूँ ,तोहे पिया !
प्राण ! तिहारे एक रोम पर, जगत वारि सब नाखूँ ।।
भेटूँ सकल अंग साँवरकौं, अधर सुधा रस चाखूँ ।
'रसिक प्रीतम' हित-चितकी बतियाँ ना काहूसौं भाखूँ।।

मैंने देखा कि पदगायन सुनते-सुनते पू.गुरुदेव ऐसे काँप रहे थे, मानो ग्रीष्मके स्थानपर शिशिर ऋतुका पदार्पण होगया हो। उनके नेत्र राधारानी बने स्वरूपके आनन-सरोजमें विजड़ित थे। उन्हें तो ये दोनों बालक नीलपद्म एवं राकाचन्द्रका सम्मिलन दृष्टिगोचर हो रहे थे। जैसे सुनीलपद्मको अपने अनादिसिद्ध चन्द्र-विरोधका पूर्ण विस्मरण होगया था। वह चन्द्रसे निस्संकोच पूर्ण प्रेमनिवेदन कर रहा था। मरकतश्याम मुखसरोजसे झरते प्रेमनिवेदनका राकाचन्द्रने कितना सटीक उत्तर दिया था। राकाचन्द्रके इस प्रेमभरे उत्तरको सुनकर नीलपद्म मानो रुदन कर उठा। हाय ! अबतक मैं इस कनकमयंकसे क्यों विरहित रहा ? नीलपद्मका प्रेमविलाप उसके नवनीत-विन्दुसम अश्रुकणोंके रूपमें झरने लगा। इधर प्रिय-समागमसे प्रफुल्लित चन्द्र भी शान्त नीरव गगनमें प्रेम-पीयूषकणोंकी वर्षा करने लगा। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका इस

विलक्षण भावदर्शनसे परम सात्विक कम्पविकार बढ़ता जारहा था। उन्हें बज्राहत वल्लरीके समान काँपता देख मैंने रासमण्डर्ल के स्वामी श्रीरामजीको संकेत किया। तुरन्त ही यवनिका गिर जाती है और अभिनयको किंचित् विराम दे दिया जाता है ।

किञ्चित् विरामके पश्चात् ज्योंही पू. गुरुदेवकी भावदशा संवरित होती है, रासलीला पुनः प्रारम्भ होती है ।

इस बार परदा ललिताकुञ्जका है। कुञ्जके बाहर एक सखी प्रहरीके रूपमें खड़ी है। उसकी अनुमतिके बिना मानो कोई भी कुञ्जप्रवेश नहीं कर सकता।

"देखो ! देखो !! सखियोंने कैसा वेष धारण किया है ! सभी अपना स्त्रीवेष त्यागकर पुरुषवेषमें गुणीजन बन गयी हैं। अहा ! इनके अंगोंमें धोती, झँगला, पाग, दुपट्टा, कमरफैंट – सभी वस्त्र कैसे फब रहे हैं ! इनमेंसे किसीने सारंगी, किसीने मृदंग, किन्हींने झाँझ, करताल और कुछने तानपूरे, इकतारे, श्रीतार आदि तन्तुवाद्य धारण किये हैं। वे कैसे उमग-उमगकर द्वाररक्षिका सखीके सम्मुख ठुमक रहे हैं ! अहा ! अनाविल रसमुद्रामें ये सखीसे निवेदन कर रहे हैं :–

"कुंज पौरि ठाढ़े भये, करौ खबर सखि जाय ।
हम जु गुनी बहु दूर के, प्रिया सुयश सुनि आय ।।

(अर्थ)

"हे सखी ! तुम भवनके अन्तर्भागमें जाकर अपनी स्वामिनीसे निवेदन करो कि बाहर गृहतोरणके समीप आम्रकी शीतल छायामें बहुत दूरसे समागत गुणीजन आसीन हैं। जो रावरी आज्ञा मिलै तो कुछ अपने गुण आपके सम्मुख निवेदन कर आपका सुख-संवर्धन करैं ।"

गुणीजनोंका निवेदन सुनकर द्वाररक्षिका महलके भीतर चली जाती है और सत्वर ही महलके अन्तर्भागमें प्रवेशकर कुछ काल पश्चात् ही लौटती है। उसे रानीकी आज्ञा प्राप्त होगयी है कि गुणीजनोंको भीतर महलमें उपस्थित करे ।

(पटाक्षेप होकर पर्दा गिर जाता है)

कुछ क्षणोंके पश्चात् ही नवीन झाँकीको प्रदर्शित करता पुनः परदा

उठता है। दर्शक देखते हैं–

"निकुञ्जान्तर्गत रंगमहलका दृश्य है। प्रिया-प्रियतम राधामाधव अतिशय सुभग परम रसमय श्रृंगार धारण किये पुष्प-पर्यंकमें विराजित परस्पर रसकेलि कर रहे हैं। उनके अंगोंमें आज पुष्पोंसे विरचित सम्पूर्ण श्रृंगार शोभा पा रहा है। बेलाके मुकुट और चमेलीके पुष्पोंसे उनकी .वेणी ग्रथित है। सर्वांगोंमें चम्पादि श्वेत शुभ्र पीताभायुक्त पुष्पोंके ही अलंकार सुशोभित हैं । पैरोंमें पैंजनी और कटि किंकणीतक शुभ्र रजत एवं वज्रमणिखचित हैं। रजतके घुँधुरू नूपुरोंमें अतिशय मधुर रुनझुन-रुनझुन·रव कर रहे हैं ।"

मैं अपने आपमें ही विचार करने लगता हूँ–"मुझे एवं मेरे समान ही यहाँ आसीन अन्य दर्शकोंको तो यह रासलीला चाहे कितनी ही रसमयी हो, प्राकृत ब्रजवासी बालकोंका एक कुशल अभिनय ही दृष्टिगोचर हो रही है, परन्तु अहा ! मेरे इन धर्म-मातुल श्रीपोद्दार महाराज और गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी कैसी पावन विशुद्ध दृष्टि है कि उन्हें इन गृहस्थ कामज ब्रजवासी ब्राह्मणोंकी सन्तानोंके पदगायन और रासाभिनयोंमें सर्वान्तर्यामी सर्वनियामक सच्चिदानन्दघन परतत्व परब्रह्म परमात्मा साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे दोनों ही मेरे अति सन्निकट बैठे हैं, परन्तु इनकी एवं मेरी दृष्टिमें कितना आकाश-पातालका भेद है ? मेरी दृष्टिके सम्मुख तो जहाँ मेरी धर्म-भगिनी बाई सावित्रीकी वाटिका है, गोरखपुर नगरकी भूमि और नभ है, वहीं मेरे पार्श्वमें ही विराजित मेरे गुरुस्वरूप श्रीराधाबाबाके नेत्र यहीं चिन्मय संधिनीशक्तिकी परिणति– ब्रजपुर वृन्दावनकी परम रसमयी वसुन्धरा एवं उसीके द्युलोकका दर्शन कर रहे हैं। अहा ! उनकी कैसी विशुद्ध प्रीतिरसभरी दृष्टि है कि वे जगत्के मायामय कीचका दर्शन ही नहीं करते और इन साधारण गँवार बालकोंमें, इनके मात्र श्रीकृष्णवेषमें सज्जित हो जाने भरसे , उनमें अपने आराध्यको भरा देख रहे हैं। इनकी पावन विशुद्ध दृष्टिमें न तो कहीं कोई जागतिक वाटिका है; न ब्रजवासी बालकोंका रासलीलादल है, न ही कहीं कोई अभिनय-क्रीड़ा हो रही है। इन्हें तो अपने परमाराध्य परम प्राणधन अनन्त ऐश्वर्यनिकेतन भगवान् श्रीकृष्ण ही माधुर्यरससुधापानकी अत्युत्कट अभिलाषावश अपने किशोरावेशके अन्तरालमें अपनी समग्र भगवत्ता, अशेष ब्रह्मरूपता, सर्वनियामकता एवं अखण्ड ईश्वरताका आत्यंतिक विस्मरणकर ब्रजपुरकी

विमल वसुन्धरामें विहार करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये दोनों सन्त त्रिजगन्मंगलकारी एवं परम धन्य हैं, क्योंकि इनकी सत्य तत्वदर्शी दृष्टिके सम्मुख जो भी आता है, ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब पर्यन्त,वह सब सत्य-का-सत्य श्रीकृष्ण ही होता है। उन्हें अपने परमाराध्य श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्य सत्ताकी प्रतीति ही नहीं होती। यहाँ तो इन बालकोंद्वारा सिद्धसन्तोंद्वारा वर्णित रसलीलाओंका अभिनय होरहा है, परन्तु जहाँ ऐसी किसी भावोद्दीपन करनेवाली चेष्टाका, परिस्थितिका सर्वथा अभाव है , अपितु दुर्दान्त आसुरी आवेश है, वहाँ भी इन सन्तोंको अपने आराध्यके अतिरिक्त कुछ भी पृथक् अनुभव नहीं होता। कितनी विशुद्ध इनकी पावन निष्ठा है !

हम अज्ञानी जीवों और इन सच्चे सन्तोंके दर्शनमें यही अन्तर है । हमें पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशायें, तारावली, चन्द्रमा, आकाश, तम, तेज आदि अधिदैव जगत् सत्यवत् भासित होता है; हमें अधिभूतरूप विश्व भी – कीटसे ब्रह्मापर्यन्त सत्य दिखते हैं; हमें प्राण, मन, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, त्वक्, विज्ञान(बुद्धि), वीर्य आदि अध्यात्मरूप जगत् भी सत्य दिखता है, परन्तु इन सभी अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्मरूपोंमें हमें उनके नियामक श्रीकृष्ण कहीं नहीं दिखते। परन्तु इन महासिद्ध सन्तोंको इन सबके रूपोंमें सर्वान्तयामी, सर्वनियामक श्रीकृष्ण ही पूर्णतया भरे ओतप्रोत सत्य दृष्टिगोचर होते हैं। शेष सभी प्रतीयमानता उन्हें विनाशी, क्षणभंगुर माया समझमें आती है। ये सन्त ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सर्वत्र मात्र अपने प्राणाराध्य श्रीकृष्णको सत्य देखनेके कारण, इन सभीको प्रतिपल परममंगलमयी विशुद्ध स्नेहराशिका दान करते हैं और हमारी अज्ञानमयी मायादृष्टि इन्हें रागद्वेषमयी त्रितापदायिनी भीषण भवज्वालामें दग्ध करानेकी हेतु होती है। देखो न ! इन ब्रजवासी रासमण्डलीके प्रत्येक पात्रमें ये महाकृपावतार रससिद्धसन्त बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र अपने आराध्य महाभाव एवं रसराज श्रीराधामाधवको देखते हुए, उन्हें इनका ही दान कर रहे हैं, और हम इन्हें मात्र ब्रजवासी बालक देखनेके कारण भले ही, थोथी भावुकतावश ही इनके द्वारा प्रदत्त श्रीकृष्णप्रीतिभावको ग्रहण करते हुए भी, इन्हें अपनी त्रितापज्वाला ही प्रदान कर रहे हैं ।

'आओ चलें ! इन पावनहृदय सन्तोंकी विमल दृष्टिकी अनुकृति करते

हुए ही सही, इनसे किञ्चित् साम्य तो करें और रासलीलादर्शन करें। कैसी विलक्षण बात है कि सम्पूर्ण विश्वप्रपंचके द्रष्टा, अन्तर्यामी हुए सबके गहिराकाशमें छिपे परमानन्द वितरण करनेवाले सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र आज स्वयं रसवश हुए अपनी प्राणप्रिया रासेश्वरी राधारानी सहित सिंहासनासीन इन गुणीजनवेषधारी आभीर सुन्दरियोंसे आनन्दोपभोग करनेके लिये लालायित – चञ्चल हो रहे हैं ।

गुणीजनोंको श्रीश्यामप्रिया राधारानीकी आज्ञा मिल गयी है–

''तबहिं प्रिया बोली मुसकाई । जो जानत प्रकटौ चित लाई ।।

'' हाँ ! हाँ ! तुम जो कुछ भी गुण-कला जानत होउ, सो अतिसय उत्साहसौं हम दोनूँनके सम्मुख प्रकट करिकै दिखाऔ और मेरे प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरकौं रिझावौ ।''

अरे ! अरे ! यह क्या ? गुणीजनोंने तो हू-ब-हू ज्यों-का-त्यों प्रिया-प्रियतमका भेष बनाकर दोनोंको चकित कर दिया। स्वयं श्रीकृष्ण चकित हैं। **समाजी गा रहे हैं** –

देखि लाल कछु रहे ठगे से । स्वप्न कहहि अरु अहहिं जगे से ।।

श्रीकृष्ण –''अहा-हा ! मैं यह कहा अचंभौ देखि रह्यौ हूँ ? मैं जागि रह्यौ हूँ कि स्वप्न देखि रह्यौ हूँ ? प्रिये ! ये कहा कौतुक होय रह्यौ है ? ठीक, सांगोपांग मेरे द्वै रूप कैसें ह्वै गये ?''

श्रीराधारानी –''प्यारे ! ये तो गुनीजन हैं ! मेरी आज्ञानुसार लीला-अनुकरण करिकैं आपकूँ दिखाय रहे हैं ।''

इधर तो प्रकटमें रासलीला हो रही है, और आओ ! उधर पू. गुरुदेवके भावसंसारकी भी झाँकी देखें ! – समाजियोंके वाद्योंकी ताल और झंकारमें अपनी कटिकिंकणी एवं पदनूपुरोंका स्वर हू-ब-हू मिलाकर उनके भावजगत्में सर्वत्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण भर गये हैं। एक ओर तो उनके प्रियतम उनकी सहोदरा अग्रजा राधारानीके साथ सिंहासनासीन हैं और शेष सभी दृश्य उन्हें श्रीकृष्णकी ठीक अनुकृतिमें व्यक्त होता दिखने लग जाता है। वे एक क्षण अपनी भगिनीके बगलमें बैठे सिंहासनासीन श्रीकृष्णको देखते हैं और तब अपने बगलमें ही आसीन पोद्दार महाराज, श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीपर दृष्टि निक्षेप करते हैं। वे इन दोनोंके स्थानपर भी उन्हीं श्रीकृष्णकी आकृतिको हू-ब-हू किञ्चित् भी अन्तर नहीं लिये देखते हैं । उनकी दृष्टि आकाशकी ओर

उठती है। आकाशपथमें भी उन्हें अपने प्राणपति भरे नृत्य करते दिखते हैं। एक नहीं, अनन्त रूपोंमें सर्वत्र उनके प्रियतमकी अनुकृतियोंसे ही मानों समग्र अन्तरिक्ष भर गया हो। मानो सर्वत्र भूमि, नभ, नक्षत्र, चन्द्र, वृक्ष, जनसमुदाय, स्त्री-पुरुष सभीके रूपोंमें शत-सहस्र सौन्दर्य-मन्दाकिनीकी धारा बहाते सर्वत्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। पू. गुरुदेवके नेत्र नाचते हुए-से अपने प्रियतम नन्दनन्दनमें डूबने लगे। उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उनका मन अपने प्रियतमके इस अपार मनोहर नृत्यपर कोटि-कोटि प्राणोंको न्यौछावर कर दे रहा था। पू. गुरुदेव स्तब्ध हैं। उनकी श्रीकृष्णपूरित दृष्टिमें सम्पूर्ण जगत्का ही अस्तित्व जो विलीन हो गया है। हाँ ! उनके सम्मुख सिंहासनासीन उनके प्रियतभ उनकी अग्रजा भगिनी सहित अवश्य विराजित हैं। किन्तु इन सम्मुख विराजित सिंहासनासीन श्रीकृष्ण और सर्वत्र भरे श्रीकृष्णके रूपोंमें कहीं कुछ भी अन्तर नहीं। एक-सा सौन्दर्य, एक-सा श्रृंगार, एक-सा हाव-भाव, एक-से अंग-अवयव, वैसी ही मुसकान, लावण्य और नित्य नव-नवायमान उमँगती शोभा। पू. गुरुदेव प्रेमभ्रान्त हो उठते हैं। रसस्रोतमें डूबते-उतराते उनके चित्तकी दशा विलक्षण ही हो उठती है। इसकी प्रबल लहरोंसे उनकी बुद्धि पूरी आवृत हो जाती है। उनका यह आवेश तब शिथिल होता है, जब श्रीपोद्दार महाराज उन्हें हिलाकर सचेत करते हैं–"बाबा! ये रासधारी तो पूरे नट हैं, देखो ! कैसी शरीरकी लचक है इनकी ! ये तो अपने तनको पूरे गोलाकार रूपमें ही मोड़ देते हैं !"

पू. राधाबाबा अचिन्त्य लीला-महाशक्तिकी प्रेरणासे विक्षिप्त होते-होते मानो बच गये। रासलीला चल रही थी। श्रीमती राधारानीका स्वरूप बना बालक गा रहा था। वह बालक मानों गुरुदेव पू.राधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजकी ओर मुख किये उन्हें ही सम्बोधित कर रहा था। यद्यपि रासलीलामें उसको ठाकुर स्वरूपके प्रति सम्बोधन करना चाहिये था।

ये तो चतुर प्रीतिके आलय।
हियमैं आनँद- निधि जब उमगै , मन अरु बुधि -बल कछू न चालय।
बरन्यौ चहूँ कछुक गुन इनके, सुमति प्रेम बस हिलै न हालय।
वृन्दावन हित' रूप बिहारी, प्रेम-सिन्धु ते कौन उबारय ।।

श्रीराधारानी–हे प्राणवल्लभ ! आप तो चतुर-शिरोमणि हो ही, किन्तु ये (दोनों) भी अत्यन्त चतुर-शिरोमणि एवं प्रेमके आलय(घर) हैं। इनकी प्रेमभरी

दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ

रसीली लीला(दशा) देखकर, इनके भावनकूँ परखिकैं मेरे हृदयमें हू प्रेमसमुद्रकी तरंगैं उमड़ि रही हैं। इनके सम्मुख मेरौ बुद्धिबल तों कछु ही नाँय चलै। मैं अपने मनसौं इनके प्रेम–गुण कछु-एक बरणन करनौ चाहूँ हूँ, किन्तु इनके प्रेमकी अगाधता देखकर मेरी बुद्धि न तो हिलै है , न ही डुलै है, अतिशय (मुग्ध) मूढ़ हो जाय है। हे प्राणेश्वर ! अब या प्रेम-समुद्रसौं मोहि तुम ही उबार सकौ हो, और कौन उबारै ?

(श्रीराधारानीकी गीतोक्तिका उत्तर प्रियतम श्रीकृष्ण भी गीतोक्तिके रूपमें ही देते हैं। ये भी पू. श्रीपोद्दार महाराज और पू.राधाबाबाकी ही ओर मुख कर, उन्हें ही संबोधित करते हैं।)

श्रीकृष्ण–

छिन-छिन नेह अपूरब सरसै।
मुख हेरत ही हेरत इनकौ, प्रेम तरंगनि मन-मति हरषै ।
उमग्यौ प्रेम पयोधि स्वामिनी, अति ही आनँद गरजै सरसै।।
बूढ़त लेउ बचाय अतिलड़ी, कृपा घुमड़ि पावस ज्यौं बरसै ।
वृन्दावनहित रूप-चातुरी नैंक नहीं मो हिय सौं परसै।।

(अर्थ)

हे मेरी प्रानाधार ! मैं इन प्रेमीजनोंको देखकर मेरी जो गति होय रही है, वाकौ किन शब्दनते वर्णन करूँ ? मेरे उरमें छिन-छिनमें नेह-निधि उमगि रही है । और इन दोऊनकौ प्रेम देखकर मेरौ हियौ प्रेम-समुद्रमें डूब्यौ ही जाय है। हे अतिलड़ी ! अब बेगि ही मेरे ऊपर आप कृपारसरूप बादर बरसाऔ। जातैं मैं इनकी कछु गति समुझ सकूँ, मेरे लिये तो ये दोनूँ अगम्य होय रहे हैं। हे मेरी जीवनमूरि ! आप तौ मोहीकूँ प्रीतिमें परम चतुर समझ रहीं थीं, किन्तु इनकी परम पवित्र प्रीति-चतुरताके आगें तौ मोमें चतुरताकौ लेस हू नाँय ।

(दोहा)

हा ! हा !! राधे मुकुटमनि ! हा मम जीवन प्रान !
हा ! हा ! कुँवरि किसोरि प्रिय, नागरि परम सुजान।।

सहसा प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरके पद्मविनिन्दित चञ्चल नयन प्रेमविरहकी उच्चातिउच्च दशाका प्रकाश करते हुए अश्रुवर्षा करने लगते हैं

और उनका विरहभाव हाहाकार रूपमें उनके मुखके बोलोंके रूपमें फूट पड़ता है – "हा प्राणप्रिये राधे ! हा मेरी रसमणि प्रेममुकुटमणि !! हा मेरी जीवनप्राणेश्वरि!!! हा कुँवरि किशोरी ! हा प्रिये ! इन प्रेमीजनोंके ऋणके भारतें अब तो मोहि तुम ही उबारो।

ये कहते-सुनते ठाकुर-स्वरूप और राधारानी-स्वरूप अपनेको आत्मविस्मृतकर पू. राधाबाबाके पास चले आते हैं और पू.गुरुदेवको सम्बोधित कर कहने लगे–

(चौपाई)

छद्म बढ़ाय प्रिया प्रिय बोले। अस अनुकरण को करै अमोले।।

अहो बाबा ! अब हमने छद्मवेष दूर करि दियौ है। सच्चे प्रिया-प्रियतम तो आप ही हौ । हम तो गुनीजन हैं । आपकी आज्ञा पायी तो हमने अनुकरन कियौ । अब आप ही बताऔ कि ऐसो परम अद्भुत अनुकरन और कोई करि सकै है ? प्रिया-प्रियतम तौ सच्चे आप ही हौ, आप अपने सरूप कूँ मति भूलौ। अब हमारी कामना पूरी करौ । हे कामनापूरन कल्पवृच्छ स्वामीजी ! आप ही हमारी स्वामिनी हौ। पहिलै हमकूँ वचन देऔ तौ हम माँगैं।

(इतने में ही समाजी गान कर उठते हैं)

कह्यौ प्रिया पैहौ, तुम पैहौ । मानि वचन निष्फल नहिं जैहौ।।

(समाजी) हे गुनीजनो ! तुम पाओगे, पाओगे । ये परम उदारशिरोमणि महापुरुष द्वय हैं, यदि प्रसन्न है जायँ, तो तुम कदापि निष्फल नायँ जाओगे। तुम्हैं जो चाहिये सोई माँगि लेऔ।

(समाजी पुनः गाते हैं)

तबहिं गुनी बोले सुनि लीजै। हम चाहत निज प्यारौ दीजै।।

इतनेमें कुछ गुनीजन बने समाजी पू. पोद्दार महाराजके पास भी पहुँच जाते हैं और कहने लगते हैं– "हे परमोदार ! हम ये ही भिच्छा चाहैं कि अपने प्यारे श्यामसुन्दर कूँ हमें दै देऔ । ठाकुर एवं ठकुरानी बने स्वरूप भी पू. श्रीराधाबाबासे यही भिक्षा माँगते हैं ।

(समाजी पुनः गाते हैं)

सुनत प्रिया सुधि सबै भुलाई । हाँ–नाहीं कछु कही न जाई।।

मौन चकित कछु अकी-जकी सी।बुद्धि सिथिल भई सिमिटि थकी सी।।

श्रीठाकुर एवं प्रियाजी-(श्रीराधाबाबाको संबोधित कर)

अति विनीत वर वचन तब बोले गुनी सुजान।
सत्यसंध विरदावली, राउर कीन छिपान।।

(चौपाई)

मिलिबौ ना मिलिबौ नहिं सोचू। कछु न भई आज्ञा संकोचू ।।
अबहूँ जो इतनौ सुनि पाऊँ । यह न मिलै तौ उठि घरजाऊँ।।

(अर्थ)

हे सत्यसंध विरदावलीवाले स्वामीजी एवं सन्त पोद्दार महाराज ! मिलिबे, न मिलिबे को हमें नैंक हू सोच नायँ है। केवल आपकी आज्ञाकी बाट हम तौ देखि रहे हैं । यदि आप कह दौ कि ये वस्तु तो हम तुम्हें नाँय दै सकैं तो तुरन्त बिना संकोच, बिना दुःखके हम अपने घर चले जावैं ।

समाजी(पू. पोद्दार महाराज एवं पू.राधाबाबाकी ओर से)

कहत लाडिली सबहिं सुनाई । तुम कत गुनी हियें दुख पाई ।।
लेहु लाल, घर जाउ सुजानू । भाग्य तुम्हार न जाय बखानू।।

(अर्थ)

हे गुनीजनो ! तुम अपने मनमैं नैक हू दुखी मत होऔ। लेऔ, तुम इनते इनके प्राननसौं प्यारे लालनकूँ लै ही जाऔ । तुम सभीके भाग्य बड़े ही विलच्छन हैं। लैऔ ! आनन्दसौं ये लालनकूँ तुम्हें देय रहे हैं ।

(परदा गिरजाता है, अब लीला दूसरा मोड़ ले लेती है)

ठाकुर एवं ठकुरानी सिंहासनमें विराजे हैं। गुनीजनवेषमें समाजी ठाकुरको अपने अधीन कर लेते हैं और पकरि.कर ले जाय रहे हैं । समाजी गाते हैं:–

(चौपाई)

गुनी लियौ करि पकरि लालकौं । गयौ हियौ कुम्हलाय बालकौं।।
ललकि गह्यौ प्यारी तब लालहिं। करि बैठी निज प्रियउरमालहिं।।
गुनिजन बोलि कही तब प्यारी । एक विनय सुनि लेउ हमारी ।।

(अर्थ)

जैसे ही गुणीजन प्रियतम श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर अपने संग ले जानेको उद्यत होते हैं, असह्य वेदनावश प्रिया तो ऐसी मुरझा जाती हैं मानो

कनकलता वज्रपातसे कुम्हला गयी हो। उनके प्राण तो अत्यन्त द्रुतगतिसे उनके हृदयकमलसे निकलकर अपने प्रियतमकी उर-माला बन जाते हैं।

अपने प्रियतमके विरहकी आशंकासे उनके समस्त अंग पसीने से लथपथ हो जाते हैं। अत्यंत वेदनाके कारण वे बाह्यज्ञान खो बैठेंगी , ऐसा ही लगता है। किसी प्रकार अपनी वेदनाको संवरित करती हुई वे कहती हैं– "हे गुनीजनो, तनिक ठहरो ! मेरी एक विनय सुनि लेऔ ।"

प्रियाजी–

(दोहा)

लाल समान जो वस्तु कोउ, तिभुवन दीखै कोइ।
माँगौ ताकी दून जू, अबहिं देउँगी तोइ ।।

(अर्थ)

मर्मान्तक पीड़ासे व्यथित हुई स्वामिनी कहती हैं– हे गुनीजनो ! यदि मेरे प्यारे श्यामसुन्दरके समान तुम्हें इनके स्थानपर कोई भी दूसरी वस्तु रुचै और तुम लैनो चाहौ, तो दुगुनी, चौगुनी, सौगुनी मोपैते ले लैऔ, मैं सहर्ष वह वस्तु तुम सबकौं दै दूँगी, इन मेरे प्राणस्वरूप प्रियतमकौं तुम मेरे पास छोड़ जाऔ । मैं इनके बिना और ये मेरे बिना छिनहू जीवित नाँय रह पावैंगे।

(गुणीजन गाते हैं)

{राग तैलंग,ताल-त्रिताल}

तुम बिनु को न्याय करै, हे सर्बेश्वरि प्यारी मेरी।
लालन सौं बढ़ि कौन, मोहि इन सम लखि ना परै।।हे सर्वेश्वरि०
सकल भुवन सेखरमनीजु ये, तदपि न प्रभुता ध्यान धरै ।
रूप राधिकाचरन दासिकौ पटतर अब न तरै।।हे सर्वे०

(अर्थ)

अहो सर्वेश्वरी प्यारी ! आप तौ न्यायाधीश हौ। आप हू विचार कर लौ। इन प्यारेके समान त्रिभुवनमें अन्य कोऊ वस्तु है का ? ये त्रिभुवननायक शेखरमणि हैकैं हू अपनी प्रभुताकौं भूल आपके चरण-कमलनके अनन्य भ्रमर बन रहे हैं।

श्रीप्रियाजी-

सुनिजु बैन गुनियनके प्यारी । सकुचि सोचि मुनिगिरा उचारी ।।
सुनहु गुनी लै जाहु लाल मम। सत्य कहत कोउ वस्तु न इन सम।।

(अर्थ)

प्यारे गुणीजनो ! तुम्हांरे वचन परम सत्य हैं । लालनके समान त्रिभुवनमें कोउ वस्तु है ही नाँय। यासैं तुम जीते, मैं हारी। लैऔ मेरे जीवन-धनकूँ लैजाऔ ।

(समाजी गाते हैं)

(दोहा)

चले गुनी तब मुदित ह्वै,गहि मोहनकौ हाथ।
प्यारी दसा जु कहिय कस, लाल नमित लखि माथ।।

अरे, अरे ! गुणीजन श्रीकृष्णकों प्रियासौं विलग करकै लै जाय रहे हैं ! प्रियतम श्यामसुन्दर निम्नमुख किये अपनी प्रियाको त्याग उनके संग जाय रहे हैं; अब प्रियाकी कैसी आकुल दशा है, इसका क्या वर्णन किया जाय।

इधर प्राकृत देश गोरखपुरकी कृष्णनिकेतन-वाटिकामें तो रासधारी ब्रजवासी यह लीला सम्पादित कर रहे हैं, चलो, उधर पू. गुरुदेवके भावजगत्‌की संघटित लीलाकी भी झाँकी देखें। पू.गुरुदेवके सामने तो चिन्मय वृन्दावन व्यक्त है। चतुर्दिक् पारिजात-तिरस्कारी तरुश्रेणियाँ झूम रही हैं । षड्ऋतुओंकी समग्र शोभा मानो इन तरुराजि पर न्यौछावर हो रही है। इन तरुओंको चारों ओरसे माधवी लतायें आलिंगित किये हैं । उन पर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंके गुच्छ लदे हैं । कुसुमोंसे मकरन्द झर रहा है । उनके मधुगन्धको अपने दुकूलमें धारण किये मन्द समीर प्रवाहित हो रही है। गुन-गुन करती भ्रमरावली विचरण कर रही है; किसी-किसी भ्रमरका स्वर यदा-कदा इतना उच्च हो उठता है, मानो वह हरिगुणगान करता उन्मादित हो उठा हो। ऐसे सुरम्य वृन्दावनमें प्रिया-प्रियतम एक पुष्पासन पर विराजित हैं। पू. गुरुदेव प्रियाकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उनपर व्यजन डुला रहे हैं । सहसा प्रियतम श्रीकृष्ण अतिशय गंभीर होकर अपने आलिंगन-निबद्ध प्राणप्रियाकी ओर अति सतृष्ण देखते हुए कहते हैं –"प्राणेश्वरी! ऐसा अवश्यंभावी प्रारब्ध समुपस्थित हो गया है, जिससे कुछ-एक क्षणोंके लिये मेरा तुमसे वियोग संघटित होना अवश्यंभावी है। और यह कहते हुए वे एक ओर अति अनमने निम्नमुख किये चल पड़ते हैं। अकस्मात् इस प्रकार अपनी प्रियाको सहसा ही आलिंगनमुक्त कर प्रियतमको अति विषादमें भरा निम्नमुख किये जाते देख

प्रियाकी अनुजा भगिनी बने पू. गुरुदेव इस प्रकार काँप उठते हैं, मानो अत्यंत सुविकसित किसी कञ्चनवल्लरीपर वज्रपात हो उठा हो। प्रिया श्रीराधारानी तो तत्क्षण ही 'हा प्राणनिकेत !' उच्चारण कर मूर्च्छित हो जाती हैं। अपनी अग्रजा प्राणोपम भगिनीको इस दशामें देख पू. गुरुदेवके हृदयमें ऐसी असह्य वेदना उठती है कि उसका भार उनका मस्तिष्क सह ही नहीं पाता। प्राणाधार प्रियतमके बिना मेरी प्यारी बहिन कैसे जीवित रह पावेगी ? और कहीं उसके प्राण उसका शरीर त्यागकर प्रियतमके संग पलायन कर गये तो उसके बिना क्या मेरा शरीर-धारण होगा ? इस भयसे उनके प्राण अभिभूत हो उठते है। उनकी बुद्धिका संतुलन ही डाँवाडोल हो जाता है। " उन्हें दौड़कर प्रियतम श्रीकृष्णको रोकना चाहिये" – एक बार उनमें इस समयोचित कर्तव्यका स्फुरण होता तो है , परन्तु मूर्च्छित, भूलुण्ठित अपनी भगिनीको सम्हालनेकी त्वराने उनके इस प्रयासपर भी पूर्ण विराम लगा दिया है।

"मेरी बहिनका तो सर्वस्व समर्पित है, एकमात्र प्रियतमके लिये ही। प्रियतम-सुख ही इसका साध्य है। इसकी समस्त चेष्टाएँ मात्र प्रियतम श्यामसुन्दरकी प्रसन्नतापर ही केन्द्रित हैं। इसका तो श्रीदामभैया, अथवा अन्य सखियोंके प्रति जो सौहार्द है, वह भी है सर्वथा प्रियतम प्राणसुन्दरके निमित्तसे ही। इसका तो वैभव, श्रृंगार सभी प्रियतम-सेवाकी ही सामग्री है। इसमें अन्य कोई इच्छा नहीं, वासना नहीं, मनमें मात्र एक विशुद्ध अभिलाषा है – 'नीलसुन्दर प्राणवल्लभ सुखी हों । किन्तु जब ये उसके प्राणधन जीवनसर्वस्व ही उससे छिन गये, उसे छोड़कर चले गये दीख रहे हैं–तो वह कैसे जीवन धारण करेगी ? विचार करती मञ्जुश्यामाके भावको वरण किये पू.गुरुदेव अनर्गल अश्रुप्रवाह करने लगते हैं ।

उनके सम्मुख जो वृन्दावनका परम सुभग दृश्य था, वह भी प्रियतमके बिदा होते ही दूसरा ही हो गया है। दिशायें धूएँसे धूमिल अत्यन्त म्लान होगयी हैं, महिषश्रृंगके समान समग्र अंतरिक्ष ही मानो काला पड़गया है। स्वयं दिनमणि सूर्य भी निस्तेज हुए रोते-बिलखते प्रतीत हो रहे हैं। अपनी प्राणोपम पुत्री भानु-दुहिताका विरह-दुःख भला सूर्यदेव कैसे सह पाते ? वे प्रसन्न कैसे बने रह पाते ? आपाततः विषादित वे निस्तेज अपनी अस्ताचल-यात्रा भी स्थगित कर बैठते हैं । प्रस्फुटित कुसुमगुच्छ मुरझाये भूलुंठित हैं । सुखस्पर्शी

शीतल पवन भी एक झंझावातकी तरह विरहाग्निमें तपी लग रही है। उन्हें ब्रजकी धरा भी अभूतपूर्वरूपसे कम्पित होती-सी दिखती है। असहाय किंकर्तव्य-विमूढ बालिका बने पू. गुरुदेव दुःख, शोक, भयके अनन्त भारसे अभिभूत हुए काँपने लगते हैं। उनके पास तो जलपात्र भी नहीं है, जिससे वे आकुल-मूर्च्छित अपनी बड़ी बहनके अंगोंपर यमुनाजल लाकर छींटकर उन्हें जाग्रत् करनेका प्रयास तो करें। वे तो अपनी अग्रजाके मस्तकको अपनी गोदमें लिये उसके मुरझाये म्लानमुख पर अपनी अश्रुवर्षा ही कर पा रहे हैं।

अचानक ही उन्हें अपनी अग्रजा राधाके अंगोंमें प्राणतन्तुओंका जीवन्त उग्र स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है। वे सँभलें, इतनेमें तो उनकी भगिनी नितान्त विक्षिप्त-सी अपने प्राणसारसर्वस्वको अन्तिम बार ही सही, जिस किसी अवस्थामें भी निहार लेनेकी वासना लिये दौड़ पड़ती है। उनकी प्राणोपम बहिनके पीछे पू.गुरुदेव भी भागने लगते हैं । उनके मुखसे मात्र एक ही पुकार उठ रही हैः—"किशोरी ! बहन राधा ! मुझे साथ ले चल ! बहिना री ! " वे देख रहे हैं—मेरी बहिनके केश-बन्धन उन्मुक्त हो चुके हैं, उसे कहाँ जाना है, किस स्थलपर जानेसे उन्हें अपने प्राणधन नीलसुन्दरके दर्शन होंगे—कुछ भी तो ज्ञात नहीं है । उसके समग्र शरीरावरक वस्त्र यदि खुल गये तो ? उसकी लज्जा-मर्यादाकी भी उसे तो परवाह ही नहीं है, उनके चरण तो निर्बाध अपनी अग्रजाका अनुसरण कर रहे हैं। पद-पदपर स्खलित होतीं, भूमिपर गिरती-उठतीं, आगे उनकी बहिन राधा और पीछे वे दौड़े जा रहे हैं । उनकी भगिनीके कण्ठसे मात्र 'हा ! प्राणनिकेत ! अहो जीवनधन ! हे हृदयसर्वस्व ! कृष्ण रे ! का करुण नाद वनप्रान्तरको प्रतिनादित करता निःसृत हो रहा है।

सहसा पू.गुरुदेव देखते हैं कि उनकी भगिनीके अपने प्राण-प्रियतम नीलसुन्दरके वृन्दाकाननकी धरापर अंकित पदचिह्न दिख जाते हैं। मानो वे स्पष्ट ही संकेत कर रहे थे—'आओ, आओ ! अपने प्राणप्यारेको हमारे सहारे अन्वेषण कर लो !' और अब तो वे और उनकी भगिनी दोनों ही रविनन्दिनी यमुनाके तटकी ओर दौड़ पड़ती हैं। क्योंकि वे चिह्न यमुनाकी ओर ही अग्रसर होते उन्हें दिखते हैं । उन दोनोंके नेत्र केन्द्रित हो रहे हैं अब्ज, यव, अंकुश, वज्र, ध्वज आदि चिह्नोंसे विभूषित उस पथ पर। किन्तु यहाँ आनेपर उस विशाल कदम्बकी छायाके नीचे उन्हें दिख जाती है उनके प्रियतम नीलसुन्दरकी

(अर्थ)

प्यारे गुणीजनो ! तुम्हारे वचन परम सत्य हैं । लालनके समान त्रिभुवनमें कोउ वस्तु है ही नाँय। यासैं तुम जीते, मैं हारी। लैऔ मेरे जीवन-धनकूँ लैजाऔ ।

(समाजी गाते हैं)

(दोहा)

चले गुनी तब मुदित ह्वै,गहि मोहनकौ हाथ।
प्यारी दसा जु कहिय कस, लाल नमित लखि माथ।।

अरे, अरे ! गुणीजन श्रीकृष्णकों प्रियासौं विलग करकै लै जाय रहे हैं ! प्रियतम श्यामसुन्दर निम्नमुख किये अपनी प्रियाको त्याग उनके संग जाय रहे हैं; अब प्रियाकी कैसी आकुल दशा है, इसका क्या वर्णन किया जाय।

इधर प्राकृत देश गोरखपुरकी कृष्णनिकेतन-वाटिकामें तो रासधारी ब्रजवासी यह लीला सम्पादित कर रहे हैं, चलो, उधर पू. गुरुदेवके भावजगत्की संघटित लीलाकी भी झाँकी देखें। पू.गुरुदेवके सामने तो चिन्मय वृन्दावन व्यक्त है। चतुर्दिक् पारिजात-तिरस्कारी तरुश्रेणियाँ झूम रही हैं । षड्ऋतुओंकी समग्र शोभा मानो इन तरुराजि पर न्यौछावर हो रही है। इन तरुओंको चारों ओरसे माधवी लतायें आलिंगित किये हैं । उन पर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंके गुच्छ लदे हैं । कुसुमोंसे मकरन्द झर रहा है । उनके मधुगन्धको अपने दुकूलमें धारण किये मन्द समीर प्रवाहित हो रही है। गुन-गुन करती भ्रमरावली विचरण कर रही है; किसी-किसी भ्रमरका स्वर यदा-कदा इतना उच्च हो उठता है, मानो वह हरिगुणगान करता उन्मादित हो उठा हो। ऐसे सुरम्य वृन्दावनमें प्रिया-प्रियतम एक पुष्पासन पर विराजित हैं। पू. गुरुदेव प्रियाकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उनपर व्यजन डुला रहे हैं । सहसा प्रियतम श्रीकृष्ण अतिशय गंभीर होकर अपने आलिंगन-निबद्ध प्राणप्रियाकी ओर अति सतृष्ण देखते हुए कहते हैं –"प्राणेश्वरी! ऐसा अवश्यंभावी प्रारब्ध समुपस्थित हो गया है, जिससे कुछ-एक क्षणोंके लिये मेरा तुमसे वियोग संधटित होना अवश्यंभावी है। और यह कहते हुए वे एक ओर अति अनमने निम्नमुख किये चल पड़ते हैं। अकस्मात् इस प्रकार अपनी प्रियाको सहसा ही आलिंगनमुक्त कर प्रियतमको अति विषादमें भरा निम्नमुख किये जाते देख

विनाश कर देनेको दौड़ पड़ते हैं, वे प्रेमीजन-सुहृद, स्वयं उनके लिये ही जीवन धारण करनेवाली अपनी प्रियाको ऐसे व्यथा-सागरमें क्यों असहाय एकाकिनी छोड़ आये ? प्रियानुजा मञ्जुश्यामा अन्ततः मुखर हो ही गयीं !

"प्राणेश्वरी ! तुम्हींने तो गुणीजनोंको मुझे दान कर देनेका वचन दिया था, और तब तुम्हीं उन्हें मुझे देनेमें असमंजस अनुभव कर रही थीं । अब भला, तुम्हारी वचन-रक्षाकर तुम्हारे भक्तवात्सल्यकी अनन्तकालतक यशध्वजा फहराना क्या मेरा कर्तव्य नहीं था ? अतः मैंने ही इन गुणीजनोंको संकेत कर दिया था कि प्रिया ऐसे तो मेरा दान कदापि नहीं कर पावेंगी। हाँ, मैं इन्हें अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक त्यागकर यदि यमुनाके किनारे चला आऊँ, तो तुम मुझे अपने घर भले ही ले जाना । अब प्राणेश्वरी ! तुम्हारी मेरे विरहमें और मेरी तुम्हारे विरहमें जब ऐसी विषम प्राणघाती दशा इन गुणीजनोंने देखी, तो ये स्वयं ही पिघल गये और मुझे तुमसे माँगनेकी बहुत भारी भूल मानने लगे। लो ! इनकी कृपासे ही यह मेरा और तुम्हारा मिलन हुआ है। देखो ! ये गुणीजन अपराधबोधसे गड़े, तुम्हारे सम्मुख आनेका साहस ही नहीं कर पा रहे हैं ।

अपनी भावलीलामें अपने प्रियतमकी ऐसी प्रेमोक्ति सुनते-सुनते पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी बहिर्मुखी वृत्ति हो उठती है। वे अपने सम्मुख रासधारियोंको लीला करते देख रहे हैं –

(समाजी श्रीहरिवल्लभजी राग देश, ताल धमारमें गा रहे हैं)

कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगत, कबहुँक पिक-सुर गावै।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि, संगहि उठि-उठि धावै ।।
कबहुँक नैन मूँदि अन्तर गति मनिमाला पहिरावै ।।
परमानँद प्रिय स्याम -ध्यान करि ऐसेहिं विरह गमावै ।।

(अर्थ)

प्रिया राधा अपने प्रियतमके प्रेम-विरहमें कभी तो सभी कुछ विस्मृत कर निविड़ अतिशय घने अन्धकारको ही प्रियतम श्यामसुन्दर समझ 'हा प्राणवल्लभ !' उच्चारण करती आलिंगन करने लगती हैं, कभी काली कोकिल बनी स्वयं 'पीहू, प्रीतम, प्रीतम' मधुर स्वरमें पुकारने लगती हैं। कभी अतिशय संभ्रममें 'कहाँ गये ,कहाँ गये ''कहती अपने प्राणवल्लभके अंकमें आलिंगित हुई उठकर दौड़ने लगती हैं । कभी नैन मूँदकर ध्यानमें अपने प्रियतमकी छवि

प्रत्यक्ष करती, उन्हें अपनी गलेकी वनमाला पहनाने लगती हैं । श्रीपरमानन्दजी कहते हैं, कि प्रियतम श्यामसुन्दर भी अपनी प्रियाके समान ही, ध्यान करते–करते ही, अपना विरहकाल काटते हैं ।

समाजियोंकी इस उक्तिके साथ ही रासलीलामें भी प्रियतम–प्रियाका परस्पर मिलन हो जाता है। इस मिलनके पश्चात् श्रीजीकी उक्ति :–

(चौपाई)

प्रान हमारे लाल तिहारे । थाती राखहु सदन हमारे।
सलिल-मीन गति हम दोउ जानी । यह उपकार करहु मन आनी।।

(अर्थ)

हे गुणीजनों ! ये लालविहारी मेरे प्रान हैं, जीवनाधार हैं । सो कृपा करि मेरे इन प्राननकूँ आप अपनी ओरीसौं मेरे हृदय-सदनमें अपनी थाती करिकैं राखि देऔ; क्योंकि हम दोऊनकी जल एवं मीनकी-सी गति है। तुम यदि हमारे प्राननकी रच्छा कियौ चाहौ तो मोकूँ यह भिच्छा दैऔ । गुणीजन उत्तर देते हैं:–

सुनत गुनी बोले सिर नाई। आग्या राउर सीस सदाई ।।
चरनकमल तजि अनत न जैहें । सरन रावरीमें ही रहिहैं ।।
टहल महलकी निसिदिन करहूँ। राउर रुचि सेवा अनुसरहूँ ।।

(अर्थ)

स्वामिनीजी ! आपकी आज्ञा सिरोधार्य है। अब हम आपके चरणकमलकूँ छोड़िकै कहूँ नाँय जायँगे । आपकी सरनमें ही रहिकैं महलकी टहलमें रुचि लैकैं आपकी सेवामें चित्त दिये रहैंगे ।

समाजी गाते हैं--

(चौपाई एवं दोहा)

ह्वै प्रसन्न प्यारी सब काहू । करहु निवास कहेहु सउच्छाहू ।।
तबहीं हारि निकारि कैं दियौ युगल उर डारि।

(सखी वचन)

हम हैं ललितादिक सखी, फूलन बीननिहारि ।।

(सब सखियाँ छद्मवेष उतारिकैं फूलनके हार प्रिया-प्रियतमके श्रीकण्ठमें धारण करावैं)

(दोहा)

चूकि छमा करिये प्रिये ! आजु भई बहु बार ।
अब निकुञ्ज चलि पौढिये, अहो स्वामिनि सुकुमार।।

(श्रीजीका कथन)

ए हो ललितादिक सखी, तुम मो हियो सिराय ।
उर लगाय प्यारी कह्यौ, को अस छद्म दिखाय।।

(श्रीहरिवल्लभजीके द्वारा राग वृन्दावनीसारंगमें अति मधुर गायनके साथ यह रासलीलानुकरण समापन होता है)

(पद)

साँची प्रीति भई इक ठौर ।
मृगनयनी जु कमलदललोचन , लाल श्याम राधा तन गौर ।।
तुम सिर सोहत पाटकी डोरी, हरि सिर रुचिर चन्द्रिकामोर ।
तुम रसिकनी, ये रसिक-सिरोमनि, तुम ग्वालिनि ये माखनचोर ।
तुम करिनी ये गजबर-नायक ,तुम मालति ये भोगी भौंर ।
परमानन्द लाल गिरिधरकैं राधा- सी जोरी नहिं और ।।

(पू. गुरुदेवकी अन्तरिक अनुभूतियाँ इस प्रसंगमें उनके ही द्वारा लेखकके सम्मुख कथित की गयी हैं एवं यथास्मृति वर्णन की गयी हैं ।)

वेणीगूँथन लीला

{दूसरे दिवस भी पू. राधाबाबाने कृष्णनिकेतनमें ही इसी रीतिसे वेणी-गूँथनेकी रासलीला करायी थी। दूसरी बार दर्शक कुल इक्कीस लोग थे। यह बाध्यता थी कि सभी दर्शक स्नान करके और नवीन वस्त्र धारण करके ही बैठें। इस लीलामें भी पू. गुरुदेव एवं पू.श्रीपोद्दार महाराज दोनोंको ही महारस-भावोदय हुआ।}

जैसे किसीने अमृत उँडेल दिया हो, प्राणोंमें दिव्यातिदिव्य मधुकी धारा बहा दी हो—इस प्रकार अनुभव करते हुए पू.गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराज श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियाकी सुमधुर गायनध्वनिसे उत्पन्न महारस-सिन्धुमें डूब गये थे। इस संगीतकी मधुधाराने उनके अन्तस्तलमें नित्य अनवरत प्रवाहित भाव-स्रोतस्विनीकी चंचल तरंगोंको इतना उद्दीपित किया था कि जो रस-कल्लोलिनी उनके उरस्थलको नित्य निमज्जित रखती थी, वह गंभीर,गंभीरतम आवर्त्तों सहित उफनने लगी थी। वह संगीत-स्वरमाधुरी सामान्य तो थी नहीं, किसी प्रत्यक्षदर्शी महापुरुषकी मंत्रवत् समाधि-वाणी थी। जिसे रासलीलाके वरिष्ठ समाजी श्रीहरिवल्लभजी गा रहे थे।

(श्रीहरिवल्लभजी एवं सभी समाजी रासलीला-प्रारम्भमें मंगलाचरण कर रहे थे ।)

मध्ये-मध्ये कुसुमखचितं रत्नदाम्नानिबद्धं
मल्लीमाल्यैर्घनपरिमलैर्भूषितं लम्बमानैः ।
पश्चाद् राजन् मणिवरकृतोदारमाणिक्यगुच्छं
धम्मिल्लं ते हरिकरधृतं कर्हि पश्यामि राधे ।।

(अर्थ)

अहा ! जिनके घन जलधरकृष्ण केशोंके मध्य-मध्यमें कल्पतरु-काननके कुसुमों द्वारा,खचित विलक्षण रसकलाकृतियाँ निर्माण की गयी हैं; जो ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंकी प्रामाण्यरूपा ब्रह्मविद्यास्वरूपा मणिमालाओंसे निबद्ध हैं; जो शास्त्रप्रसिद्ध सन्ताद्घोषित निविड़ आनन्द-सुधा-सागरकी उद्‌गमस्थल स्वरूपा मालती मालाओंसे भूषित हैं; जिसके अन्तिम भागमें जिसे कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं, कुछ मनीषी जगत्कर्त्ता कहकर परिचय देते हैं, कुछ

प्राणी जिसे परमात्मा बतलाते हैं; जिसे कुछ श्रेष्ट पुरुष भगवान् कहकर प्रतिपादित करते हैं, जिसका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है, देश–कालकी सीमामें जो बद्ध नहीं है; वही देव महामणि–माणिक्य–गुच्छवत् सुशोभित है। जिसका ग्रन्थन करते समय रूप–माधुर्यकी शत–सहस्र धारायें बहानेवाले मरकत–द्युतिकलेवर रसराज रसिकशेख़र नन्दतनय, उसे हृदयसे लगानेका मनोरथ करने लगते हैं, ऐसी उन रसिकशिरोमणि–करपल्लवरचित तुम्हारी वेणीके हे श्रीमती राधारानी ! मुझ दीन–हीनको कब दर्शन होंगे ?

इस मंगलाचरणका श्लोक सुनते-सुनते पू.गुरुदेव और पू. पोद्दार महाराजके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अमृत पीकर आनन्दोन्मत्त हुए प्राणीकी तरह भाव-भक्तिके प्रबल आवेशसे उनका रोम-रोम पुलकित होने लगा। विलक्षण रसभरे इस मंगलाचरणके श्लोककी एक-एक शब्दावली उन्हें, मानो किसी परम अनिर्वचनीय लोकमें पहुँचा गयी। एक क्षण तो उन दोनोंकी ऐसी दशा हो गयी कि उन्हें होश ही नहीं रहा एवं उनके शरीर जड़वत् हो गये। यद्यपि दोनोंके नेत्र स्थिर थे, किन्तु अन्तर्में पूर्ण भावचेतना उत्ताल तरंगोंमें उमड़ रही थी । उनके सम्मुख एक परम चिन्मय दृश्य व्यक्त हो उठा था। **प्रिया राधारानी स्नानकर एक श्रृंगारचौकी पर विराजित हैं। उनकी श्रृंगारचौकीकी** विलक्षण शोभा पू.गुरुदेव एवं पू. पोद्दार महाराजके परम चिन्मय नयनोंमें हू-ब-हू इसी प्रकार व्यक्त हो रही थी , जिसका वर्णन कोई पूर्ववर्त्ती रससिद्ध संत निम्न श्लोकमें इस प्रकार कर चुका है।

लसत्कनक कुट्टिम स्फुरदमन्दमुक्तावली
समुल्लसित कान्तिभिः कलित शक्रचापव्रजे।
महाभरणमण्डपे इन्द्रनीलसिंहासनं
सखीजनसमावृतं समधितिष्ठ रासेश्वरी ।।

(अर्थ)

वह श्रृंगारचौकी विशुद्ध सत्वस्वरूपा कनकसे निर्मित है। वहाँ किसी प्राकृत कनकधातुका तो प्रवेश ही नहीं है। उस श्रृंगारचौकीके चतुर्दिक् ब्रह्मविद्यारूप असंख्य रत्नहार इतस्ततः भूमिमें बिखरे हैं। इन हारोंकी मणियोंसे शुभ्र मन्द ज्योत्स्ना दिप-दिपा रही है। प्रियतम श्यामसुन्दरका तन जिस विशुद्ध सच्चिन्मयी नीलिमासे बना है, वह नीलिमा ही यहाँ मणियोंके रूपमें इतस्ततः

प्रकीरित है। विशुद्ध चिन्मय रागभाव ही जहाँ माणिक्यराशि है, और विशुद्ध प्रियतमरति ही जहाँ प्रवाल बनी है,इन समग्र भावोंके एक साथ एक स्थानपर एकत्रित होनेसे सर्वत्र शक्रचाप (इन्द्रधनुष)की-सी कान्ति समुल्लसित है। इस महाभरण-मण्डपमें प्रिया राधारानी विराजित हैं। वे अपनी ललिता, विशाखादि सखियोंसे समावृत हैं ।

देखो ! देखो ! प्रिया मुसका रही हैं । पू.गुरुदेव एवं पू. पोद्दार महाराज दोनोंहीके हृदय इनके अरुण अधरोष्ठकी कान्तिसे दमकती कुन्दपंक्ति सदृश दन्तावलि द्वारा प्रकटित सरस ज्योत्स्नासे उद्भासित हो उठे । वे इस शोभामें तन्मय हैं । कितना विशुद्ध मन है, इनका। इस विशुद्धसत्वमयी हासछटामें निरतिशय डूबे रहनेके अतिरिक्त अन्य कोई संकल्पका लेश भी जहाँ उत्थित नहीं हो रहा है । उनकी अन्य सभी कामनाओंपर किसी परम रसिकशेखरने अपनी महारसमयी यवनिका जो गिरा दी है। पू.गुरुदेवके नेत्र निमेषशून्य हो गये हैं। कुछ क्षणके लिये वे सब कुछ विस्मरण कर जाते हैं। उनका हृदय अत्यन्त वेगसे स्पन्दित हो रहा है, किन्तु अन्य अवयव चैतन्यविहीन-से हो गये हैं, सर्वथा जड़ बन गये हैं । उनका हृदय तो चैतन्य है, वह उनकी वृत्तियोंको श्रोत्रेन्द्रियकी ओर उन्मुख किये है और उस श्रोत्रेन्द्रियमेंसे प्रमुख समाजी श्रीहरिवल्लभजीकी परम सुमधुर संगीतध्वनि आ रही है। वे तोड़ी रागमें एवं चौताल तालमें आलाप भर रहे हैं :

मज्जन करि कंचन चौकी पर बैठी बाँधत केसन जूरौ।
रुचिर भुजनकी उपमा अनुपम , ललित करन बिच झलकत चूरौ।।
लाल जटित बैंदी सुविराजित तैसोई फबि रह्यौ माँग सिंदूरौ ।
चतुर बिहारी प्रिया मुख छबिपर वारत कोटि सरद ससि पूरौ।।

अहा ! सद्यस्नाता श्रीराधारानी उपरोक्त कंचनचौकीपर अपनी नीलश्यामघन केशराशिका जूड़ा बाँधे बैठी हैं। उनके अंग-प्रत्यंगोंसे शोभाका निर्झर झर रहा है। पू.गुरुदेव चित्र लिखे-से बैठे हैं । उनका आनन्द विगलित हृदय अश्रु बनकर नेत्रोंके पथसे बह चलता है। पू.गुरुदेवके सम्मुख अपनी अग्रजा भगिनी भानुकिशोरीका कैसा विलक्षण सौंन्दर्य प्रकट हो रहा है । "मानों अभी-अभी सिन्धुमन्थन हुआ है । और उसमेंसे साक्षात् महालक्ष्मी कमलासनके स्थानपर कंचनचौकीपर सुविराजिता प्रकट हुई हो ,ऐसी कुन्दनद्युति

प्रियाकी अंगकान्ति है । सघन नील मेघराशि मानो दामिनीमालासे बँधी नभके मध्यभागमें एकत्रित हो गयी हो , और यदा-कदा दो-चार बूँदें टपका देती हो, ऐसी शोभा प्रियाके क्षौम-शुभ्र-वस्त्रावृत केशकलापके जूड़ेकी है, जो उनके अनावृत अंगोंपर मुक्तामालावत् जलविन्दु टपका रहा है।

कमलनाल-सी परम सुकोमल कुन्दनद्युति काम-कमनीय दोनों भुजायें इतनी अनुपमेय रुचिर हैं कि इनकी सुन्दरता सदैव श्रीकृष्णचन्द्रके नयन-सरोजोंको लुभाये रखती हैं । इनके युगल करोंमें सप्त रत्नोंकी सात-सात चूड़ियाँ सदैव खनकती रहती है। ये चूड़ियाँ यद्यपि हैं, रत्न-पाषाणनिर्मित किन्तु इनकी सुकोमलता कुसुमदलोंकी अपेक्षा भी अत्यन्त मृदुल-मृदुलतर है। एक लघु तूल-पुंजमें जितना भार होता है , उतना भार भी इन चूड़ियोंमें प्रियाके करोंको संवेदित नहीं होता। इन चूड़ियोंके रंग एवं इनकी कलात्मक संरचना इतनी सुमनोहर है कि इन्हें निहारते हुए विश्वविमोहन प्रियतम नीलसुन्दर भी अपनी त्रैलोक्य मनोरम छविको इन पर न्यौछावर कर देनेको समातुर हो उठते हैं । इन चूड़ियोंके अग्रभागमें प्रियाकी कमलदलोंसी सुन्दर दोनों हथेलियोंकी अपरिसीम शोभाको मानो निरखते इन्द्रनीलमणिके दो कंकण (कड़े) सुशोभित हैं। इन नीलमणि वलयोंके रूपमें स्वयं प्रियतम ही प्रियाके कमल-किसलय-से दोनों हाथोंको सुपरिवेष्टित किये रहते हैं। इन नीलमणि वलयोंके पश्चात् प्रिया प्रियतम-रागकी तीन-तीन रक्तवर्णकी माणिक्यचूड़ा धारण किये रहती हैं। तत्पश्चात् वे विशुद्ध सत्वमयी वर्णकी सर्वोच्च भक्तिभावकी प्रकाशिका दो पीतद्युति पुखराजरत्नकी चूड़ी पहनती हैं एवं सबसे पश्चात् उनकी कलाइयोंमें दो चूड़ियाँ जो विशुद्ध ज्ञानभावकी प्रकाशिका हैं वज्रमणि (हीरे)की धारण होती हैं। इसके पश्चात् उनके बाहुयुगलमें त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका प्रतीक कंचनवलय सुशोभित होता है।

पू.गुरुदेव श्रीमती राधारानीकी चूड़ियोंकी शोभा देखते-देखते इतने आनन्दित हो उठते हैं, कि उनका हृदय इस आनन्दातिरेकको सँभाल नहीं पाता। उन्हें भय है कि कहीं वे मूर्च्छित होकर गिर नहीं पड़ें और पू.पोद्दार महाराज इस रासलीलाभिनयको ही स्थगित नहीं कर दें। उनका हृदय भावातिरेकमें इतनी तीव्र गतिसे स्पन्दित हो उठता है कि **उन्हें प्रियाकी** भुजाओंसे अपने मनको निवारित करना पड़ता है। **परन्तु मन तो मन ही है।**

वह प्रिया राधारानीकी भुजाओंकी शोभासे निवारित होता है तो मुखचन्द्रकी शोभामें फँस जाता है। अहा ! उनके मुखारविन्दका सौन्दर्य तो इन सुकोमल बाहु-वल्लरियोंसे अनन्त गुना मनोज्ञ है। प्रियाके बाहुयुगल पद्म हैं तो उनका मुख पूर्ण चन्द्र है। अहा ! यह पूर्ण प्रफुल्लित चन्द्र तो उनके मानसमें प्रेम-पीयूषकणोंकी वर्षा ही कर बैठता है। पू. गुरुदेव अपने मानसमें लबालब भरी इस छविपर अपने प्राणोंको न्यौछावर ही तो कर सकते हैं ।

अहा ! उनके कुन्दनद्युति चमकते ललाटपर कुंकुमकी बड़ी-सी बेंदी सुशोभित हो रही है, जो झलका रही है कि प्रियाका मन-मस्तिष्क अपने प्रियतमके प्रेमसे लबालब भरा है और इस बिन्दीके ठीक ऊपर मध्य सिरमें रत्नमालाओंसे समलंकृत केशराशिको समानरूपमें बाँटकर विरचित सीमन्तमें सिन्दूरकी ऐसी शोभा है, मानो दोनों ओर सघन वनांचलको चीरकर सुमेरु शिखर जगमग-जगमग करता ज्योतिर्मान हो रहा हो। प्राणप्रिया श्रीराधारानी माधुर्य एवं लावण्यकी अपरिसीम सागर हैं और इनकी मुखछविपर पूर्ण शरच्चन्द्र निर्मञ्छन करनेयोग्य तुच्छ प्रतीत हो रहा है ।

पू. गुरुदेव देख रहे हैं कि सद्यस्नाता प्रियाकी वस्त्रालंकार-अनावृत सौन्दर्यराशिको अपने नयनोंमें आपूरित करनेको लालायित प्रियतम श्रीकृष्ण स्नानकुञ्जके एक सघन लतासमूहकी ओटमें छुपे-दुबके इस अनुपम शोभाको निरख रहे हैं ।

(समाजी गा रहे हैं)

(राग- आसावरी,ताल त्रिताल)

कौन भाँति मुसकाति छबीली दुरि प्रियतम तिहिं छबिहि निहारत ।
निरखत रूप प्रकास माधुरी, रीझि प्रान- तन- मन- धन वारत ।।
चहुँ दिसि सखी-सहचरी जे निज, सादौ कछु सिंगार विचारत ।
प्रेम चाइके रंग रँगी सब, एक हार अरुझे निरवारत ।।
इक सौंधी फुलेल लियैं ठाढ़ी , एक फूल सौं केस सँवारत ।
मज्जन करि पहिरे पट-भूषन छिन-छिन प्यारसौं पियहिं सँभारत ।।

अरे ! अरे ! ऐसा तो सुना है कि प्रियतम श्रीकृष्ण अनेकों प्रकारसे मुसकाते हैं। विश्वविमोहिनी मन्द मुसकान तो उनके अधरोंपर सदा ही विराजित रहती है। अपनी मधुरातिमधुर मुसकानसे आत्माराम योगीन्द्र -मुनीन्द्रोंको अपने भक्तिपथका पथिक बनानेकी अभिसन्धिसे जब ये मुसकाते हैं, तब इनकी

और ही विलक्षण मुनिजनमनमोहिनी मुसकान होती है। लीलारससुधाकी शत-सहस्र मन्दाकिनी धाराओंको अपने निजजनोंमें बहाने और उन्हें सदा-सदाके लिये आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका संकल्प उदय होनेपर भी ये मुसकाते हैं, तब इनकी निजजनमोहिनी मुसकान कुछ पृथक् ही होती है। रासलीलाके समय जब ये ललित त्रिभंगरूप धारणकर अपने मकर कुण्डलज्योतिसे उद्भासित युगल अमल कपोलोंको जब मुसकानमाधुरीसे दमकाते हैं और तब इनकी अपूर्व सौन्दर्यराशिसे राका शरदशशि भी लज्जावनत हो उठता है, वह उनकी मन्मथ-मानस-मन्थिनि मुसकान कुछ पृथक् ही अर्थ रखती है। परन्तु आज तो इनका दाव ऐसी अपूर्व सौन्दर्यराशिकी उद्गमस्थलीसे पड़ा है जिसकी एक अति साधारण मन्द मुसकानसे ही ये भूमि-लुण्ठित होने जा रहे हैं। तभी तो न ये उस मुसकान माधुरीको सम्मुख आकर देख भी नहीं पाते । वे उसे लता-ओटसे मात्र दुर-दुर छिप-छिपकर ही देख रहे हैं । अहा ! उनकी सद्यस्नाता प्रियाके निरावरित अंग कैसे स्वच्छ हैं, मानो उत्कृष्ट कंचनमणिके नवोन्मिषित अंकुर हों , इतने मृदु हैं मानो माधवीलताके पुष्प-पल्लव हों, इतने स्निग्ध हैं, मानो वर्षणोन्मुखी नवजलधरोंके मध्य संजात विद्युल्लहरी हो, इतने सुरभित हैं मानो त्रैलोक्य-लक्ष्मीके भालका कस्तूरीतिलक हो, इतने सुचिक्कण एवं आकर्षणशील हैं मानो सौभाग्यश्रीके अंगोंमें मूर्त कामकला हो । अहा ! लता ओटसे अपनी प्रियाकी निराविल छवि देखते वे अभूतपूर्व आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं । उनकी कैसी दर्शन लालसा है, जो क्षण-क्षणमें उत्तरोत्तर चञ्चल चलायमान हो रही है। वे प्रतिपल व्याकुल हैं, कैसे अपनी प्रियाके अभूतपूर्व, परम विलक्षण अंगोंको शीघ्र-से-शीघ्र आलिंगित करें। उनकी उत्कण्ठा अब तो चरमोत्कर्षको प्राप्त हो रही है।

न जाने कितने कालसे वे लता-ओटमें छिपे अपनी प्रियाके वदनारविन्दका मधुपान कर रहे हैं, इसे कौन कहे ? चिन्मय जगत्में यह प्राकृत जगत्की क्षणभंगुर कालसत्ता तो है नहीं जिसकी पल-क्षण, घड़ी-प्रहर, दिवस-रातके रूपमें परिगणना हो । अनादि, असीम कालसत्ताके व्यतीत होने पर भी न तो उनके नेत्र थके हैं, न ही तृप्त ही हो रहे हैं, अपितु जितना देखते हैं, उतनी ही दर्शनोंकी प्यास उत्तरोत्तर बढती जाती है। अहा ! प्रियाकी अंगशोभा देखते हैं तो नयन वहीं रम जाते हैं, वहाँसे हट ही नहीं पाते, अधरोंपर दृष्टि चली

जाती है तो दीखता है, मानो रक्तरागमणिके अंकुर किसी अपूर्व कंचनलतामें उन्मिषित हों; करतल, चरणतल, नखावली, एकसे-बढकर-एकको शोभाके आवर्त्तोंमें पड़े प्रियतम भ्रमित हुए, बस अपना तन-मन-धन न्यौछावर ही कर पा रहे हैं।

उनकी प्रियाको चारों ओर से सखी सहचरियाँ घेरे हैं । अपने प्रियतमकी छुप-छुपकर प्रिया-शोभा निरखनेकी चातुरी उनसे अप्रकटित तो है नहीं, अतः वे प्रियतम-दर्शन लालसानुरूप प्रियाको अत्यन्त सादा ही श्रृंगार धारण कराती हैं । ये सभी सखियाँ अपनी प्रिया एवं प्रियतमके प्रेम एवं चावमें पूरी रँगी हैं । इन सखियोंमें कुछ-एक तो प्रियाका उलझा हार सुलझा रही हैं,कुछ-एक अतिशय सुगन्धित फुलेल लिये हैं, एक प्रियाके केश पुष्पोंसे सुसज्जित कर रही है। सभी सखियाँ अतिशय उत्कण्ठित हो रही हैं। प्रियाने स्नान कर साधारण वस्त्राभूषण धारण कर लिये हैं एवं अपने प्राणप्रियतमकी क्षण-क्षण स्मृति-सुधि कर रही हैं।

इधर प्रियतम बार-बार दृष्टि छुपा-छुपाकर अपनी प्राणप्रियाकी सलौनी आकृति निरखते जाते हैं, किन्तु उनको तृप्ति होती ही कहाँ है ? इतनी देर दर्शन करके भी आँखें दरसनकी प्यासी ही रह जाती हैं। प्रियाके कंचन-गौर श्रीअंगोंपर तो नित्य लावण्यकी लहरें उठती रहती हैं। वे तो नित्य नवसुन्दर हैं, उनका क्या तो स्नान और क्या श्रृंगार ! परन्तु यह तो सखियोंके हृदयमें उठतीं अपने प्रियतमको नित्य नव-नव सुखदान देनेकी लालसाओंका मात्र एक लघु-सा प्रीति-उपक्रम है। उनके अति मधुर श्रृंगार-रसकी नित्य नव-नव वेगसे उमगती चंचल लहरें हैं, जो विविध श्रृंगारसे अपनी प्राणसखीको सज्जितकर अपने प्रियतमके नयनोंका आनन्दवर्धन करती रहती हैं। श्रृंगाररसकी पाठशालाकी तो यह प्राथमिकी ही है, प्रेमरसकी एक अतिशय प्यारी, अति स्वाभाविक प्रीति-प्रक्रिया भर है जिससे प्रेरित हुईं सखियाँ अपनी प्राणसखी भानुतनयाकी श्रृंगारसज्जा करती हैं एवं भानुतनया स्वयं अपने हाथों अपनी सखियोंका अतिशय वात्सल्यसे भरकर श्रृंगार करती हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी प्राणप्रियाका पूर्ण मनोयोग एवं लालसासे श्रृंगार करते हैं और प्रिया अपने प्रियतमको अपने समग्र कौशल और प्यारदान देकर सजाती हैं । जो हो, तात्पर्य यह है कि यहाँ – इस वृन्दाकाननमें प्रिया-प्रियतमकी माधुर्यरसप्रधान श्रृंगार-सेवार्चना कुछ निराले ढंगसे ही होती है। यहाँ विधि-विधान,कार्य-कारण

कुछ नहीं है, यहाँ तो सखियोंके, प्रियाके, प्रियतमके अन्तस्तलमें प्रवाहित अनाविल प्रमसिन्धुकी उर्मियाँ ही हैं, जो प्रिया-प्रियतमके अन्तस्तलमें प्रिया-प्रियतम, सखी-समुदाय, पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, पुष्प-भ्रमर एवं क्या कहें समग्र ब्रज-बृन्दावनको ही निरंतर नृत्य कराती, थिरकती रहती हैं। ये प्रीति-उर्मियाँ परम रसमयी भाव-समुद्रकी लहरें, जहाँ, जिसे, जब, जिधर बहा ले जावें, वहाँ, उस ओर, वैसे ही बह जाना यहाँका अखण्ड प्रेमनियम है।

लो ! प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी दशा देखें। प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमणि अबतक जो स्वयंको गोपन रखकर अपनी प्रियाको लता-जालकी ओटसे निरख रहे थे, अब उनके पार्श्वमें ही आकर अवस्थित हो गये हैं। वे अपनी प्रियाके सम्मुख अपना प्रेम-निवेदन कर रहे हैं। समाजी अतिशय मधुर स्वरमें आलाप ले रहे हैं –

हियकौ प्रेम समुझि रस-नागर चरननि चूमत नयननि लावत ।
हित ध्रुव' प्रीति परस्पर ऐसी, ये उनकौं वे इनहिं लड़ावत ।।

सप्त स्वर्ग – सप्त पाताल समन्वित असंख्य ब्रह्माण्डश्रेणीके प्रधान प्रतिपालक विराट् पुरुष परमात्मा जब इस ब्रज-वृन्दावनमें नन्दगोपतनय बनकर अवतरित होते हैं, इस ब्रजभूमिकी परम अनोखीलोक-वेदमर्यादाओंसे परेकी प्रीति-रीति अपनाते हैं, और बृषभानुगोपदुहितासे प्रेमकी पैंगें बढ़ाने लगते हैं तो उन्हें अपने अनन्त अपरिसीम ऐश्वर्य और भगवत्ताकी सभी मर्यादाएँ रससिन्धुके अतल तलमें डुबानी ही होती हैं। यहाँ तो उन्हें भानुनन्दिनी-नायक होनेके लिये उसका अतिशय प्रेम-दुलार स्वीकार करना ही होता है और अपने प्राणोंके उन्मत्त वेगसे उसे दुलारना ही पड़ता है। रसिक-शेखर रसनागरको तो नागरी राधाके चरण चूमने ही होंगे, उन्हें कभी नयनोंसे और कभी अपने हृदयदेशसे सटाना ही होगा ।

यहाँ इस प्रीति निकुञ्ज-स्थलीमें तो भला उनकी अर्चना'**ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः'** मन्त्रसे होनेसे रही। भले ही कहीं वे अनन्त चरण, अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र हों, परन्तु यहाँ तो इस अनन्तता, ईश्वरत्वका बाना उन्हें उतार फेंकना ही पड़ेगा। इस प्रेमभूमिके जो स्मृति-वेद-विधिसे उलटे-पुलटे रसीले नियम हैं, वे सभी उनपर लागू हो ही जावेंगे। यहाँ उनकी आसन,पाद्य,अर्घ्य, स्नानीय, धूप, दीपसे पूजा कदापि नहीं होगी। यहाँ तो रजनीका विराम होते

ही ललितादि गोपकन्याएँ, अपनी अतिशय प्रेमिल खण्डिता भाव-प्रवण भर्त्सना-स्तुतियोंसे ही उन्हे जगावेंगी, शुक-सारिका पक्षीगण काम-सूत्रा पाठ करके ही उनका प्रथम प्रभात-स्तवन करेंगे। अपनी प्राणवल्लभाकी नील-साड़ीको उत्थान-त्वरामें पहन लेना और उस अनावृत कंचनांगीको अपने पीताम्बरसे आच्छादित कर लेना ही, यहाँ उनको आसन समर्पण होगा। यहाँ तो प्रिया द्वारा उनके कपोलोंपर प्रीतिचिह्न अंकन कर देना ही उनका मुख-प्रक्षालन होगा। यहाँ तो निज प्रियाके द्वारा उन्हें अपने आलिंगनपाशमें ग्रथित कर लेना ही उनका तुलसी-गंगोदक स्नान होगा। **'प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे'** ही यहाँका प्रधान मन्त्र है, अतः यहाँ तो प्रिया भानुतनयाके प्रेमपवित्र उत्तुंग उरोज ही उनके परमाराध्य इष्ट शालिग्राम हैं और उसका संलालन, संग्रहण और निज वक्षस्थलमें संलिप्त केशरसे उसका श्रृंगार करना ही यहाँ उनका पवित्रतम इष्ट-पूजन है। निज प्रियाकी निशापर्यन्त कामकेलिसे बिथुरी, उन्मुक्त-बंधन, अस्त-व्यस्त केशराशिका वेणी-ग्रन्थन ही यहाँका धूपदीप-समर्पण है। प्रियामुखका उच्छिष्ट ग्रहण करना ही यहाँ नैवेद्य है और उसके प्रेम-सुदृढ़ बाहु-पाश आलिंगनमें पूर्णतया निबद्ध होकर आत्मसुधि विस्मृत हो जाना ही यहाँकी ध्यान एवं समाधि-प्रक्रिया है। प्रिया-विरहमें अविरल अश्रुप्रवाह ही यहाँका स्नान है और 'हा प्रिया, हा प्रिया' कहकर हाहाकार भरा विलपन ही यहाँकी स्तुति है, अस्तु कहनेका तात्पर्य यही है कि इस रसीली ब्रजभूमिकी अनोखी प्रीति-प्रक्रियामें सर्वलोकैकपाल प्रिया-प्रियतम राधामाधव (विराट पुरुष)की अर्चना अतिशय निराले ढंगसे ही होती है। यहाँ तो सभी लोक-वेद-मर्यादा प्रेमसिन्धुके अतल तलमें डुबानी ही होती हैं।

आओ, इसी प्रीतिभूमिके सर्वोच्च शिखर मोहन-मादन महाभावमें डूबे पू.श्रीपोद्दार महाराज एवं राधाबाबाके मनश्चित्रकी एक अल्प-सी झाँकी करें !

{पाठक सावधान रहें, इस परम चिन्मय अनाविल अनुपम श्रृंगाररस-साधनामें प्राकृत काम-कालुष्य और मलिन पाशविक स्त्री-पुरुष, रमण-रमणी भाव देखना रौरवादि नरक-पतनका ही हेतु है, अतः सावधानीपूर्वक सदैव संयत रहें, ये सभी परम चिन्मय भगवद्रराज्यकी बातें हैं। }

"श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके हृदयदेश परम रसमय वृन्दावनमें प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाकी वेणी गूँथ रहे हैं—

"असीम माधुर्यरसपूरित करोंसे प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाकी महामरकत श्यामल केशराशिको पहले अपूर्व सुगन्धयुक्त फुलेलसे सिञ्चन किया है। अहा ! निज प्रियाकी कैसी त्रिभुवनमोहक रूपराशि उनके सम्मुख व्यक्त है। अपनी प्रियाके अंग-प्रत्यंगसे झरती सौन्दर्य-सुधाका वे कैसे तन्मयतापूर्वक पान कर रहे हैं। उनके हृदयदेशमें प्रीतिसागरके असंख्य आवर्त्त एक-से-एक उच्च वेग लिये उत्थित हो रहे हैं। लो, इसी क्षण सौन्दर्यकी अपार उच्च विलक्षण रसमयी लहर आयी, इस लहरने प्रियतमके हृदयको कैसा रस-निमग्न कर दिया, इसका अनुभव तो मात्र वे ही कर सकते हैं। उनके सिवा अन्य कोई उसे जान भी कैसे पावेगा ? परन्तु अपने हृदयके इस रस-स्पन्दनसे वे उबरें-उतरें, इसके तो पहले ही प्रियाके असीम लावण्यसागरमें इतना अत्युच्च ज्वार आ जाता है कि प्रियतम अपने अस्तित्वकी रक्षा ही नहीं कर पाते और धराशायी होकर आपाततः उसमें पूरे डूब जाते हैं।

ब्रजवासी रासधारी समाजी राग कल्याणमें स्वामी हरिदासजी महाराजका परम अनुभूत पद गा रहे हैं। पदके बोल हैं–

बेनी गूँथ कहा कोउ जानै, मेरी-सी तेरी सौं प्यारी ।
बिच-बिच फूल पीत-सितराते, को करि सकै ऐरी सौं प्यारी ।।
बैठे रसिक सँवारत बारन, कोमल कर ककही सौं प्यारी।
हरिदासके स्वामी स्यामा नख-सिखलौं , बनाइ दै काजर नखहीसौं प्यारी।।

महारसिकशेखर पूज्यपाद श्रीस्वामीजीके इस पद गायनमें तो अवश्य ही वेणी गूँथी जा रही है, परन्तु पू. पोद्दार महाराज एवं पू. राधाबाबाके मानस भाव-वृन्दावनमें तो प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाके केशोंको मात्र स्पर्श भर ही कर पाते हैं कि उनकी ऐसी प्रेम-विचित्र दशा हो जाती है कि जिसका वर्णन ही कोई कवि नहीं कर सकता। यदि स्वयं सरस्वती भी कुछ कहना चाहे तो इतना ही कह सकती हैं कि जब नन्दनन्दन प्राणपति अपनी प्रियाकी वेणीकी एक लट मात्रका संस्पर्श करते हैं, इतना करते ही उनके नेत्र-मन-प्राण और उनकी समग्र अस्मितामें मात्र प्रिया-ही-प्रिया भर जाती है, और कुछ रह ही नहीं पाता। एक परम रसमयी तड़िल्लहरी उनके अंगोंमें व्याप्त हो जाती है और प्रियतमके समस्त अंग-अवयव पूर्ण निस्पन्द ही हो जाते हैं, उनकी वाणी रुद्ध हो उठती है,केवल निर्निमेष नयनोंके पथसे वे उस अप्रतिम रसमयी केशराशिको

निरखते रह जाते हैं। उनके नयनोंसे परम शीतल भाव वारिविन्दु प्रवहमान हो उठते हैं।

हाँ ! यह अवश्य है कि प्रियाकी समग्र वेणीरचना सांगोपांग उनके ही करकमल करते हैं, परन्तु करते हैं यंत्रवत् ही ।

पू.गुरुदेव एक दिवस मुझ परम अनधिकारीके सम्मुख जब महाभावगत मोहनभावकी व्याख्या कर रहे थे तो उनके कथनका सार यही था कि जब प्रियतम श्यामसुन्दर निज प्रियाके किसी भी अंगके दर्शनपर स्नेहके अतिशय अतिरेकमें सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य हो जाते हैं, और फिर सर्वथा मोहित अवस्थामें रहते हुए भी उनके द्वारा यथायोग्य निज प्रियाकी सेवा सम्पादित होती रहती है, तो समझना चाहिये कि वे मोहन-महाभाव-भावित हैं। पू.गुरुदेव श्रीराधा बाबाका इस पदके सम्बन्धमें यही कथन था कि प्रियाकी बेनी गूँथते समय प्रियतम श्यामसुन्दरकी इसी महाभावगत दशाका परम पवित्र दर्शन स्वामी हरिदासजी महाराजको इस पदकी रचना करते समय हो रहा था। इसीलिये इस पदमें वे प्रियतम श्यामसुन्दर द्वारा सम्यक् प्रकारसे वेणी गूँथनेकी समग्र क्रियाका वर्णन होशपूर्वक कर गये हैं। पू. गुरुदेव एवं पू. श्रीपोद्दार महाराज इसी भावका प्रत्यक्ष दर्शन अपने अन्तर्नेत्रोंसे रासलीलाके मध्य कर रहे थे।

प्रियतम श्यामसुन्दरने कलाकी इति करदी है। ये वेणी-रचना करना कब सीखे ? इन्हें इस कलाकी शिक्षा किसने दी ? इन सभी प्रश्नोंका उत्तर तो अचिन्त्य महिमामयी योगमाया ही जानती है। वस्तुतः तो प्रिया राधा-रानीकी धम्मिल्ल तो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधारानीके मस्तकपर भला उनके सिवा और कौन है, जो नित्य विराजित रहे। यह तो सच्चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी सदंशमें रहनेवाली संधिनी शक्तिका ही विलास है कि उन्होंने प्रियतम श्यामसुन्दरको धम्मिल्ल बनाकर अपनी प्रियाके शिरोभागमें प्रतिष्ठित कर दिया है। प्रियतम श्रीकृष्णके समान ही तो यह भी विभु है, नित्य चिन्मय है। इसकी सज्जा तो नित्य नव-नूतन हुई ही रहती है। यह धम्मिल्ल तो अनादिकालसे है, अनन्त काल तक रहेगी।

प्रपञ्चमें जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रकी चिदानंदमयी लीलाका प्रकाश होता है तथा क्रमशः लीलाविस्तारके क्रममें उनकी नित्यप्रिया श्रीमती राधा बृषभानुपुरमें बृषभानुगोपके घर जन्म लेती हैं, उसी समयसे तो वे अपनी

प्रियाके मस्तकपर विलक्षण शोभा धारणकर चूड़ा बन जाते हैं। तबसे कभी तो वे माता कीर्त्तिदा द्वारा वेणीरूपमें बाँधे जाते हैं, और कभी सखियों किंवा दासियों द्वारा। आज इसी लीला-सिन्धुके आवर्त्तोंने ऐसा सुअवसर उपस्थित कर दिया है कि वे अपने ही हाथोंसे अपनी ही श्रृंगार-संरचना कर रहे हैं। यह विलक्षण संरचना तो उनके नेत्रोंमें अनादिकालसे पूर्वतः ही भरी है। बस, वे तो मात्र इस चिन्मय अतिशय विलक्षण केशराशिका स्पर्शभर करते हैं और प्रेम समाधिमें डूब जाते हैं। धम्मिल्लका श्रृंगार तो अपने आप आविर्भूत होता है। यह वेणीगूँथनलीला तो मात्र उनके लिये है, जिनके नेत्रोंमें त्रिगुणका तेज भरा है। उन्हें तो यही दिखता है, मानो स्वयं श्रीकृष्ण अपने हाथोंसे एक-एक विकसित पुष्प, एक-एक रत्नमणिमालाको पिरो-पिरोकर अतिशय कौशलसे वेणीरचना कर रहे हैं। परन्तु पू.पोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा-जैसे सिद्ध संत दर्शक जिनकी आँखोंमें श्रीकृष्ण नखचन्द्रकी चन्द्रिका भरी है, उन्हें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि प्रियाकी नित्य चिन्मय केशराशिमें वेणीका समग्र कलात्मक श्रृंगार तो भगवती योगमाया द्वारा पूर्वतः ही किया जा चुका है। बस, प्रियतम तो अपने प्रेमभरे नेत्रोंसे उस भगवती योगमाया द्वारा पूर्व रचित श्रृंगारका दर्शन भर पाते हैं, वह श्रृंगार उनके प्रेमभरे नेत्रों एवं मनके सम्मुख संकल्प , कल्पना अथवा कुछ भी कहो, मनोरथके रूपमें सामने भर आता है। और बस तत्क्षण ही वह वेणीपर समलंकृत हो जाता है।

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज दोनों युगल संत इस सत्यको खूब अच्छी तरह अवगत कर रहे हैं, और अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी इस चिन्मय विचित्र कलात्मकताको निरखकर मुग्ध ही नहीं, समाधिस्थ हो रहे हैं। उनके सामने विलक्षण सुन्दर दृश्य है और वे सर्व बाह्यजगत्‌से आत्मविस्मृत निस्पन्द, निश्चेष्ट उसे अपने अन्तःकरणपटल पर देख रहे हैं–"प्रियतम श्यामसुन्दरने प्रियाकी अत्यन्त मनोहर वेणी गूँथी है। उसमें श्वेत, लाल, पीले, पुष्पोंसे अनोखी रसमयी संरचनाएँ की हैं। और वे तत्पश्चात् अतिशय प्रेमभरी गर्वोक्ति भी कर रहे हैं कि मेरी-सी वेणीरचना अन्य कोई भी सखी नहीं कर सकती। उन्होंने आरसीकी सहायतासे निज प्रियाको उस अपनी रचनाके सौन्दर्यका दर्शन भी कराया है ।

सचमुच ही स्वय उनकी प्रिया राधारानी भी उनकी उस चिदानन्द-मयी शोभाको देख मुग्ध हो उठी हैं। और अपने प्यारे प्रियतमसे अपने समग्र

अंगोंका श्रृंगार करनेका आग्रह कर बैठती हैं। यह सत्य, परम सत्य है कि प्राकृत जगत्‌के किसी भी मनकी सामर्थ्य ही नहीं कि वास्तवमें उस विचित्र श्रृंगार-वैभवके किसी एक अंशको तो –उस सर्वथा अतुलनीय नित्य चिदानन्दमय श्रीसौन्दर्यकी कणिकामात्रको तो छू पावे। हाँ ! उस विचित्र शोभाका अनुभव होता है, किसे होता है, कैसे होता है, यह बताना भी असंभव है। परन्तु पू. राधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराज-जैसे सन्तोंको होता है, प्रचुर होता है और उन्हें अपनेमें डुबाकर अपनेसे एकमेक कर लेता है । उसकी छायाके किसी क्षुद्र अंशको वाणी ग्रहण करती है और शाखाचन्द्र-न्यायसे ही सही , उस अनुभूत सत्यको कवि आनन्द कम्पित कण्ठसे पुकार उठता है–

बेनी सुन्दर श्याम गुही, री।
राजति रुचिर सीस प्यारी कैं चम्पक और जुही, री।।
नख-सिख लौं पहरावत भूषण, दै बीरी मुख ही, री।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन लालके, सुखकी रासि तुही, री।।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा प्रत्यक्ष देख रहे थे –" प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाकी फूलनसौं बेणी गूँथी, काजर लगायौ, ललाटपर कुंकुमकी बैंदी लगायी, कपोलनपर केसर तथा चंदनके पुष्प और चित्र रचना की , उन्हें कण्ठश्री, पदिक हार, पुष्पहार पहनाये, चरणोंमें नूपुर पहनाये, महावरकी विचित्र रचना की, नख-सिख पर्यन्त सम्पूर्ण सिंगार करकें तब अधरनकौं बीरीसे रंजित कियौ।

समाजी गारहे हैं

सारी सँभारी है सोनजुहीकी, जुहीकी ही तापै लगायी किनारी।
पंकजके दलकौ लहँगा, अँगिया गुलबाँसकी सोभित न्यारी ।।
चमेलीके हार हमेल गुलाबकी, मोरकी बैंदी दै भाल सँवारी।
आज विचित्र सँवारि कै देखिये, कैसी सिंगारी है प्यारे ने प्यारी।।

(अर्थ)

यह वृन्दावन भी विलक्षण है। यहाँकी मरकत मणिमय अप्राकृत भूमि है। इस भूमिपर स्वर्णमय गुल्मलतायें और द्रुमसमूह परिशोभित हैं। जब भूमि में ही मृत्तिकाका लेश नहीं तब मणिमय वल्लरियाँ और गुल्म-तरुपंक्तियाँ हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अतः आज प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाका जो श्रृंगार किया है उसमें उन्हें स्वर्णमय जुहीकी सारी पहनायी है। कुन्दनांगी

प्रियाकी सोनजुहीकी साड़ीकी किनारी भी जुहीके तारोंसे निर्मित है । अब लहँगेकी शोभा निरखें, वह कमलदलोंसे विनिर्मित है। और सुनो,देखो, कैसा आश्चर्य है। प्रिया गुलबाँसकी चोली पहने हैं, चमेलीके हार हैं और गुलाबकी हमेल धारण किये हैं। उनके मस्तकपर मौलसिरीके पुष्पकी बिंदी शोभा पा रही है।

भाई ! क्या आश्चर्य कर रहे हो ? क्या इसे असंभव मान रहे हो ? अभी तुमने अपने नेत्रोंमें किसी महासिद्ध सन्तकी चरणोंकी रेणु अंजनकी तरह आँजी नहीं है। अभी तुम भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी स्वरूपशक्तिसे परिचित नहीं हो। अरे भाई ! तुमने तो प्राकृत जड़ पुष्प ही देखे हैं, अतः तुम बृन्दावनके अप्राकृत पुष्पोंके रूप,रंग, आकार-प्रकारको जड़ जगत्के इदमित्थं प्राकृत पदार्थोंके समान ही समझ रहे हो। तुम्हारी यह समझमें ही नहीं आ रहा कि प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति कर्त्तुम्-अकर्त्तुम्-समर्थ है। श्रीकृष्णकी जब जैसी लीलाका प्रकाश करना हो, वह वैसा ही करनेमें समर्थ है। वह कमलदलोंको लहँगेके रूपमें परिणत कर सकती है। जुहीकी कलिकाओंको साड़ीकी किनारीके समान निर्माण कर देना उसके वाम हस्तका कार्य है। अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी लीलाको मधुरातिमधुर बनाकर स्वयं उसका रसपान कर क्षण-क्षणमें आनन्दसिन्धुमें निमग्न होनेके लिये न जाने कितनी ही बार ये इस बृन्दावनके कमल, जुही, गुलनार, चमेली, गुलाब, मौलश्री अपना संकोच , विस्तार एवं रूप-परिवर्त्तन यथानुरूप कर लेते हैं, अन्यथा तो ब्रजेन्द्रनन्दनकी अनाविल मधुरिमामय लीलारसपान और रसदानका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जाय। अस्तु,

देखो ! देखो !! पू.पोद्दार महाराज एवं पू. गुरुदेवके भावराज्यमें कैसे विलक्षण लीला-दृश्य उभर रहे हैं। पहले तो प्रियतम श्रीकृष्णने अपनी प्रियाकी अभूतपूर्व सज्जा की थी, अब प्रिया श्रीराधारानी अपने प्रियतमका श्रृंगार कर रही हैं।

समाजी केदारा राग एवं तीन तालमें गा रहे हैं-

सोनजुहीकी बनी पगिया रु चमेलीको गुच्छ रह्यौ झुकि न्यारौ।
द्वै दल फूल कदम्बके कुण्डल, सेवतीको जामा हू घूम घुमारौ।।
नव तुलसी पटुका घनश्याम, गुलाब इजार नवेलीको न्यारौ।

फूलन आज विचित्र बन्यौ देखौ, कैसो सिंगार्यौ है प्यारीने प्यारौ।।

(भावार्थ)

सचमुच ही जगत्के प्राणियों ! श्रीकृष्णचन्द्रसे, उनकी लीलासे सम्बद्ध किसी भी तत्वरहस्यको एकमात्र उनकी कृपावारिकी कणिका मात्रको ही सम्बल बनाकर ही जाना जा सकता है। अचिन्त्य भावोंमें तर्कोंके लिये सचमुच सर्वथा ही स्थान नहीं है। श्रद्धाभूत चित्तसे अनुशीलन करनेपर उनकी कृपाशक्ति सत्यको अपने आप ही व्यक्त कर देती है। यही वहाँतक पहुँचनेका एक मात्र पथ है।

पू. पोद्दार महाराज एवं पू. गुरुदेव राधाबाबाके मानसिक नेत्र कहीं हमें उनकी कृपासे एक क्षणके लिये भी मिल जाते तो हम इस प्रिया-प्रियतमकी परस्पर श्रृंगाररचना और उसकी शोभाकी एक झाँकी कर पाते। प्रकृत शब्दों, भावों एवं द्रव्योंके सहारे तो इसकी वास्तविक अद्‌भुत श्रीको, इसके असमोर्द्ध वैभवको, इसकी रूपरेखाकी एक अल्प-सी छटाको भी देखा नहीं जा सकता। लो ! प्रिया एक अभूतपूर्व प्रेमजन्य परमानन्दमें निमग्न हुईं अपने प्रियतमको अपने अंकमें धारण किये विराजित हैं । प्रियतमकी उन्मुक्त केशराशिको वे बन्धन दें, यह उन्हें सर्वथा स्वीकार जो नहीं। परन्तु उन्हें अपने प्रियतमका श्रृंगार भी करना ही है। क्योंकि निकुंजलीलाकी एक चिन्मय झाँकी प्रपञ्चमें प्रकाशित हो , इसकी सूत्रधार उन्हें जो बनना है। देखते-ही-देखते प्रिया स्वयं ही सोनजुहीकी पाग बनकर अपने प्रियतमके केश-कलापोंमें बँध जाती हैं। प्रियतमके केश सबसे उन्मुक्त रहें यह तो उन्हें स्वीकार है, किन्तु स्वयं प्रियाके प्रेमबन्धनको, उनके प्रेमालिंगनके प्रगाढ़ बंधनसे वे कैसे उन्मुक्त रहेंगे ? प्रिया तो उनमें समायी है, उनसे पृथक् प्रियतमकी सत्ता ही कहाँ है ? अतः प्रिया स्वयं ही सोनजुहीकी पाग बनी उनके केशकलापको अपने आलिंगनमें बाँध लेती हैं। लो, देखो न ! इस पागके अन्तरालसे महारसकी कैसी विलक्षण स्रोतस्विनी प्रकट हो उठी । जगत्के आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी उस विलक्षण श्रृंगार-सौन्दर्यके एक कणसे सिक्त होनेके लिये लालायित हो उठे। प्रियाने अपनेको तो अपने प्रियतमकी केशराशिसे संलग्न कर लिया, किन्तु सहसा उनके भक्तवत्सल हृदयमें अपनी सखियोंका स्मरण हो आया। इन सखियोंसे विरहिता एकाकिनी वे अपने प्रियतमसे संयोग भी कैसे करें ? बस,

उन्होंने अपनी सभी सखियोंको सर्वलीलामुकुटमणि चमेलीके गुच्छके रूपमें अपनी कलंगी बना लिया।

पू.राधाबाबा एवं पू. पोद्दार महाराज अपने रस-विजड़ित अन्तःकरणमें इस लीला-माधुरीकी बहती धाराको प्रत्यक्ष देख रहे हैं और इसके महारसमें आकण्ठ डूबते जा रहे हैं। जिनका .श्रृंगार-कौशल कभी कुण्ठित हो नहीं सकता, वे चौसठ-कला-चतुर प्रिया अति मुग्ध हुई ठहर-ठहरकर सोचने लगती हैं कि आगेकी रचना क्या हो ? इतनेमें उन्हें पुनः एक आवेश-सा आता है। अरे ! वह कदम्ब जिसकी छायाके नीचे .खड़े होकर उनके प्राणसुन्दर वंशीनिनाद द्वारा उनको आवाहन करते हैं, जिसकी अतिशय निराली हरीतिमा उनके प्राणपति प्रियतमके नयन-सरोजोंमें सदैव समायी रहती है, ओह ! जिसकी शत-शत सुन्दर शाखायें कभी एक क्षणके लिये भी प्राणधनको विस्मृत नहीं कर पातीं, उसका एक-एक पल्लव सदैव उनका अखण्ड मानस-दर्शन करता, आनन्दमें नृत्य करता,, थिरकता रहता है, वह कदम्ब तो उन्हें विस्मृत ही हो गया ! अरे ! उनसे यह कैसी प्रमाद-क्रिया घटित हो गयी ? इस तरुराजको तो उन्होंने बिसार ही दिया, जो निरन्तर प्रेम-सौरभ संचार करता सभी प्रेमीजनोंको प्रियतमकी जीवन्त स्मृति कराता रहता है, जो कालके नियमोंका सर्वथा अतिक्रमण कर पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म – सदैव एकरस मनोज्ञ एवं सुख-शीतल बना रहता है, जिसके अंग बारहों मास पुष्पभारसे नमित रहते हैं, सदा ही जो कुसुमित रहता है और जिसकी शोभासे दसों दिशायें सदैव उद्भासित रहती हैं, उसे वे सर्वथा ही विस्मृत कर गयीं ? ऐसा असम्भावित प्रमादाचरण उनसे कैसे घटित होगया ? इस प्रकार विचार करते-करते तत्क्षण ही उन्होंने इस परम पुनीत कदम्बके दो फूल उठाये और प्रियतमके कानोंमें कुण्डलके रूपमें संलग्न कर दिये। प्रियाने देखा जिन कुसुमरूप नयनोंसे कदम्ब अपने प्रियतमके मुखचन्द्रको निहारता कैसा कृतकृत्य हो उठा है। वह अत्यन्त कृतज्ञ हुआ प्रियासे अति विनीत निवेदन कर रहा है– "मेरी प्राणाराध्या ! मेरे चिर जीवनकी अभिलाषा पूर्ण कर तुमने मुझे कृतकृत्य कर दिया ! "

सचमुच ऐसी है श्रीकृष्ण-मुखारविन्द-दर्शनकी महिमा ! यह दर्शन प्राप्त हो, फिर तो कहना ही क्या है; किसीके लिये केवल मात्र यह सौभाग्य निर्धारित

ही हो जाय, प्रिया-प्रियतमकी कृपाशक्ति भविष्यमें, सहस्र-सहस्र युगसमूह व्यतीत होनेके अनन्तर भी यदि किसीके लिये ऐसे परम सुदुर्लभ संयोगका विधान मात्र करदे तो इससे अधिक जीवनकी कृतार्थता और है ही क्या ?

देखो ! देखो !! प्राणप्रिया श्रीराधारानीके कटाक्षकोरमें जो अद्‌भुत अनादि अनन्त लीलोपकरण-तालिका सुरक्षित रहती है, उसमें सेवती कुसुमकी यह वल्लरी जो आ गयी। इस सेवती लताका स्थान इस कदम्बतरुके ठीक पश्चात् ही तो था। प्रियाने अपनी श्रृंगारक्रियाकी मौजमें इस वल्लरीपर भी अपनी नेहदृष्टि डाल दी और उसके पुष्पोंका घूमघुमारो जामा अपने प्रियतमको धारण करवा दिया। लो, जब प्रियतम श्रीकृष्ण अपने अनन्त ऐश्वर्यको सर्वथा किनारे कर, एक अभिनव मुग्धताके साजसे सज्जित हुए निराविल लीलारस सिन्धुमें अवगाहन करते हुए जब इन सेवती पुष्पोंका घेरदार जामा पहन अपनी प्रिया एवं उसकी सखियोंको अपने स्वरूपभूत परमानन्दका दान कर रहे थे तो नव तुलसी मानवती होकर रूठ गयी। उसके नयनोंसे झर-झर अश्रुपात होने लगा। प्रियतमने तो उसके रूठनेकी कुछ भी परवाह नहीं की, किन्तु प्रिया यदि अपने सर्वश्रेष्ठ शालीनतागुणका निदर्शन उसके सम्मुख नहीं करें, यह कैसे संभव है ? बस, तत्क्षण ही प्रिया राधारानीने उसके अश्रु पौंछे एवं श्यामा एवं हरीतिका दोनों तुलसियोंके साथ-साथ गुलाब, इजार एवं नवेली इन पाँचों लताओं और पुष्पोंकी पंखुड़ियोंसे विशेष प्रकारका घनश्याम वर्णका पटुका विरचित किया और वह पटुका अपने प्रियतमको उपरैना (पिछौरा)के रूपमें धारण करवा दिया। लो, इन विलक्षण आवरण-पटोंमें श्रृंगारित प्राणवल्लभ प्रियतम अपनी प्रियाके कण्ठसे जा लगे और उन्हें गलबाँही दिये अपने किशोरावेशमें अपनी एवं अपनी प्रियाकी श्रृंगार-शोभा आरसीमें निहारने लगते हैं।

"अहा ! आरसीमें उन्हें अपना सौन्दर्य अपनी प्रियाके सौन्दर्यसे किंचित् हीन दिखता है। एक अप्रतिम सुमधुर हीनताजन्य संकोचकी छाया प्रियतमके मुखचन्द्रको आवृत कर लेती है। इस हीनताको निकुञ्जमें चतुर्दिक् प्रिया-प्रियतमको घेरकर विराजित ललितादि सखियाँ निरख लेती हैं। सखियोंके हृदयमें प्रेम-समुद्र लहराने लगता है। रसतरंगोंके आवेगसे उनके धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित मुक्त मुसकानके रूपमें प्रेमतरंगें मुखसे बाहर

आ जाती हैं। सभी सखियाँ उन्मुक्त हास करने लगती हैं। रासधारी समाजी अतिशय मधुर स्वरोंमें तान भर रहे हैं—

मुखसौं मुख मिलाय निरखत आरसी।
विकसित नील कमल ढिंग उदित भयौ किधौं पूरण ससी ।।
निरखि वदन मुसकाइ परस्पर करत हास गिर जात अंक खसी।
गोविन्द' प्रभु-प्यारीजु परस्पर दम्पति परे प्रेम फँसी।।

भावार्थ

अहा ! इन युगल दम्पती राधाकृष्णकी परस्पर मुखसे मुख मिलाकर आरसी देखती छबि कितनी मोहक है। दोनोंकी ही वेणी-बद्ध सघन कुन्तलराशि, विशाल कज्जलभरे नेत्र, वह मंद-मंद मृदु मुसकानयुक्त बोलन, मधुस्त्रावी अधर-युग्मोंपर नाचती प्रेम सरसता, परस्पर प्रेमभरी चंचल भ्रुकुटि-नर्तनयुक्त चेष्टाएँ , इन्हें जो निहार रही हैं, वे परम सौभाग्यवती प्रत्यक्षदर्शी सखियाँ ही जानती हैं कि इस सौन्दर्यमें कैसी विलक्षण मादकता भरी है। अमर्यादित, संभ्रमरहित स्वरूपभूत विभुरससे छलकता इनका जो हृदय है, वही ऐसा सरोवर है जहाँ यह कृष्ण-नीलनलिन भी विकसित होता है और साथ ही पूर्ण राधा-राकाचन्द्र भी उदित होता है। आश्चर्य है नलिन एवं चन्द्रका तो अनादिकालीन वैर है, परन्तु धन्य है यह गोपीमानस जहाँ ऐसी प्रेम-मादकता भरी है कि यह वैर सर्वथा एवं सदाके लिये समाप्त तो हो ही जाता है अपितु ये दोनों ही परस्पर प्रेमबन्धनमें बँध जाते हैं। ये एक दूसरेका सौन्दर्य निहार-निहारकर परस्पर रीझते हैं और फिर विहँसते-मुसकाते एक दूसरेके अंकमें गिर जाते हैं। श्रीगोविन्दस्वामी कहते हैं कि परस्पर प्रेममें फँसे ये युगलदम्पती प्रभु एवं प्यारी विलक्षण स्वभावके हैं ।

लो, अब तो ये दोनों अतिशय मुग्धभावसे अपनी श्रृंगार-माधुरीका रस लेने लगे। दोनों दम्पती आरसी में अपनी छवि देखते अपने-अपने मुख-सौन्दर्यकी तुलना करने लगते हैं कि दोनोंमें से किसका मुख अधिक सुन्दर है।

समाजी अपने-अपने वाद्योंमें सुर देने लगते हैं और ठाकुर वेषधारी बालक अतिशय मधुर ध्वनिमें राग कोशिया ताल दादरामें गाता है—

मेरो मुख नीकौ कै तेरौ री प्यारी।
दर्पण हाथ लिये नँदनन्दन , साँची कहौ बृषभानुदुलारी।।

ठाकुरके प्रश्नका उत्तर देती क़िशोरी बना ब्रजवासी बालक गाता है–

हम कहा कहैं तुमहिं किन देखौ, हम गोरी तुम श्याम बिहारी।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर, चरनकमलपर राधिका वारी।।

अहा ! प्राणवल्लभ नीलसुन्दरका अपनी प्रिया राधारानीके संग मुखसे मुख मिलाकर आरसी देखना अपने मुखसरोजके सौन्दर्यसे उनके मुखचन्द्रके रूपकी तुलना करना कितना सरस है, इसका आकलन हम लोगों-जैसे विषय-कीचमें सने जीव भला कैसे कर सकते हैं। उनकी इस प्रेममुग्ध लीलाके द्वारा कैसी विलक्षण रसतरंगें सृष्ट हो रही थीं, इसके तो पू. गुरुदेव अथवा श्रीपोद्दार महाराज ही अनुभवकर्त्ता थे और हम सभीने इस प्रवाहका आकलन यही देखकर जाना कि इस लीलाका दर्शन करनेके पश्चात् पू.गुरुदेव निरन्तर आठ प्रहर प्रस्तर प्रतिमाकी तरह निस्पन्द रहे। उन्होंने न तो जल पिया एवं न ही भिक्षा की। वे कृष्णनिकेतनसे अपने आवास गीतावाटिकातक भी कैसे आ पाये, यह उन्हींका स्वसंवेद्य अनुभव था। अवश्यमेव उनका चित्त तो किसी दूसरे ही लोकमें इस परम चिन्मय रसमयी लीलाके आस्वादनमें निरत था, हाँ, पैर किसी तरह उन्हें यंत्रवत् मोटरगाड़ीतक ले गये थे, जिसमें आरूढ़ वे चिर अभ्यासवश अपने निवासतक पहुँच पाये थे। लेखक तो उनकी विलक्षण भावदशाका प्रत्यक्षदर्शी था। तीसरे दिवस जब लेखकने उनसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया तो उन्होंने मात्र इतना ही उत्तर दिया कि"भगवान् श्रीकृष्ण जब कृपाकर तुम्हें स्वयं अनुभव करावेंगे तभी गुड़ कैसा होता है, समझ पाओगे। वाणी द्वारा बतलाने एवं कहनेका यह विषय ही नहीं है। हाँ, इतना ही समझ लो कि यद्यपि आज मैं बाह्यावेशमें हूँ, परन्तु अभी भी वह परम रसमयी झाँकी मेरे मानस नेत्रोंमें ज्यों-की-त्यों विजड़ित है ।"

अनेक दिवसोंतक पू. गुरुदेवके मुखमें रासधारी बने प्रिया-प्रियतमके परस्पर वार्त्तालापकी निम्नलिखित रसभरी उक्तियाँ नाचती रहीं –

ललिता–"प्यारे ! हमारी प्यारीकौ मुख तौ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है और आपको मुख अँधेरी रातके समान कारौ-कलूटौ है।"

श्रीकृष्ण–"अजी ! तौ चन्द्रमा हू तब ही सोभा देय है, जब कारी-कलूटी अँधेरी रात होय।" पू.गुरुदेव अनेक दिनोंतक ये निम्न पद जो रास-धारियोंने इस वेणीगूँथनलीलामें गाये थे, मुझसे एकान्तमें सुना करते थे ।

बात कहत रस रंग उच्छलिता ।
फूलन महल विराजित दोऊ मंद सुगन्ध निकट बहै सलिता।।
मुख मिलाइ हँसि देखत दरपन, सुरति-स्त्रमित उर माल विगलिता।
परमानँद प्रभु प्रेम बिबस कहैं, हममें सुन्दर को है ललिता।।

बेसर कौनकी अति नीकी।
होड़ परी लालन अरु ललना, बढ़ी चौंप अति जी की।।
न्याय पर्‍यौ ललिताके आगैं, कौन सरस कौन फीकी ।
नंददास प्रभु विलग जिन मानौ, कछु एक सरस ललीकी।।–
–

बनी तेरे चारि-चारि चूरी करन।
कण्ठसरी दुलरी हीरनकी नासा मुक्ता ढरन।।
तैसोइ नैंननि कजरा फबि रह्यौ , निरखि काम जिय डरन।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी रीझि -रीझि पाइन परन।।
–

इस बेणीगूँथनलीलाका प्रभाव पू. गुरुदेव और पू. पोद्दार महाराजपर पड़ना स्वाभाविक ही था, जो इक्कीस लोग उस सुभग निशामें इसके दर्शक थे, वे भी अनेक दिनों तक लीलाके निम्न पद गुनगुनाया करते थे–

कुंज पधारौ स्यामा ! रंगभरी रैन ।
रँगभरी दुलहिन, रँगभरे पिया, श्यामसुन्दर सुखदैन।।
रँगभरी सयनी बिछी सेजपर, रँग भर्‍यौ उलहत मैन।
रही रैन थोरी नागरिया, करौ सेज सुख सैन।।

लड़ैतीजीके नयनन नींद घुरी।
आलस बस, जोबन घन, मद बस, पियके अंक ढुरी ।।
पिय कर चिबुक परसिबौ चाह्यौ बाँकी भौंह मुरी ।
बावरि सखी हित व्यास सुवन सुख देखत लतन दुरी ।।

इस बार रासमण्डलीने कृष्णनिकेतन एवं गीतावाटिकामें सोलह लीलाएँ की थीं। इनको संक्षेपमें श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियासे लिखाकर पू. गुरुदेवने श्रीराधामाधव-सेवा-संस्थान,गीतावाटिका,गोरखपुरसे प्रकाशित भी कराईं थीं। पाठकोंकी जिज्ञासा होनेपर वहाँसे प्राप्त की जा सकती हैं।

देवाराधना द्वारा पू.पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि

(छठा अध्याय)

पू.पोद्दार महाराजकी जन्मकुण्डलीके अनुसार उनकी आयु सन् १९५२ ई. में समाप्तप्रायः थी। उनके नक्षत्र इस वर्ष उग्र मारकेशकी दशाका प्रकाश कर रहे थे। पू.गुरुदेव इन दिनों अनेकों प्रकाण्ड ज्योतिषियोंसे विचार करते रहते थे और ज्योतिष-फलितार्थ देखते हुए उन सभीको पूरी संभावना थी कि पू.पोद्दार महाराज इस वर्ष देह-संवरण कर लेंगे। यदि भगवत्कृपावश वैसा न भी हो तो अतिशय कष्टदायी रोगोंसे आक्रान्त तो वे हो ही जावेंगे, ऐसा उन सबका एकमतसे निश्चय था।

पू.गुरुदेवने इस परिस्थितिको अपने देवाराधनाके बलसे टालनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। क्योंकि वे सर्व-कर्म-न्यस्त, विरक्त, चतुर्थाश्रमी संन्यासी थे, अतः उनका स्वयंका कर्म फलदायी हो, इसकी संभावना तो थी नहीं; उन्होंने पाँच ब्राह्मणोंको लेकर देवाराधन-अनुष्ठान करवानेका निश्चय कर लिया। पाँच ब्राह्मणोंमें रतनगढ़के श्रीमोतीजी पारीक, श्रीइन्द्रजी महर्षि, श्रीसाँवरमलजी जोशी, श्रीसूरजमलजी शर्मा एवं गोरखपुरके श्रीशिवनाथजी दुबे थे। पू.गुरुदेवने मुझे भी इस अनुष्ठानमें सम्मिलित किया था। मैं यथासमय बीकानेरसे गोरखपुर आ भी गया था, किन्तु किसी दुर्दैववश ठीक समय मेरा चयन स्थगित हो गया।

बीकानेरसे गोरखपुर पहुँचनेके उपरान्त मैं कुछ दिवस गोरखपुर ही रहा और उस अवधिमें मैंने पू. गुरुदेवसे अपनी अनेक शंकाओंका समाधान किया। पाठकोंके लिये अतिशय उपयोगी जानकर इस समाधानको यहाँ संक्षेपमें उल्लिखित कर दे रहा हूँ।

मेरा प्रथम प्रश्न था – "पू.गुरुदेव ! आप हम सभीसे अनेकों बार यह कह चुके हैं कि हम सभीकी कर्मराशिका लेखा-रखनेवाली फाइलें अब कारण-जगत्के नियामक देवता – यमराजके पास नहीं हैं, वरं वे सभी फाइलें साक्षात् श्रीकृष्ण – लीलापुरुषोत्तमके पास हैं, अतः स्वयं श्रीकृष्ण ही अपने हाथों

सभीको दण्डित अथवा पुरस्कृत कर रहे हैं। जब हम सभी विषयी-पामरोंकी यह स्थिति है, फिर आपका अतीव भगवच्छरणागत पाञ्चभौतिक शरीर, अथवा पू. पोद्दार महाराजका चिन्मय-भगवत्संस्पर्शप्राप्त शरीर, क्या इन मायिक, अविद्यामूलक, जड़ नक्षत्रोंकी गति द्वारा नियन्त्रित है ? मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि व्यर्थ ही आप प्रेमजन्य अनिष्टाशंका कर रहे हैं। पू.पोद्दार महाराजके तो रोम-रोममें सर्वस्रष्टा, सर्वनियन्ता, सर्वावतारावतारी, स्वयं भगवान् भरे हैं। नित्यसिद्ध, परमानन्दविग्रह, ब्रजेन्द्रनन्दन, स्वरूपानन्दास्वादनपरायण, मायातीत श्रीहरि ही जब स्वयं जिसके अन्तःकरण और बहिःकरण-विवरोंमें प्रविष्ट होगये हों तो फिर उनमें अनिष्टके प्रवेशकी गुंजाइश ही कहाँ है ? श्रीपोद्दार महाराजका यह शरीर तो ब्रजराजनन्दनकी लीलास्थली है। बाबा ! जब यह आपकी ही निष्ठा है, तो फिर आप इस प्रकार व्यग्र एवं उद्विग्न क्यों हैं ?"

अत्यन्त कलुषपूर्ण, माया-पंकमें लिप्त, घृणित-जीवन मेरी बालोचित वाचालता सुनकर पू.गुरुदेव मुसका उठे । वे कहने लगे – "भैया ! तेरी बात पूरी सत्य है। किन्तु जब पोद्दार महाराजको साक्षात् भगवान् नहीं देखकर, पू. अ.सौ.मैया (पोद्दार महाराजकी पत्नी) उनके भोजन-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्नान-संध्या – सबकी यथोचित व्यवस्था करती हैं, वे ऋतु-अनुसार शिशिरमें ऊनी वस्त्र पहनते हैं, रजाई ओढते हैं, अग्नि तापते हैं, तो जहाँ शरीरकी यथायोग्य सभी व्यवस्था होती है, तब ग्रह-नक्षत्रों और उनके अधिदेवोंकी शान्तिकी यथायोग्य व्यवस्था भी तो होनी ही चाहिये।"

"भैया ! यद्यपि मैं इसे स्पष्ट जानता हूँ कि तुझे मलेरिया बुखार नहीं आयेगा, 'श्रीकृष्ण स्वयं ही तेरा बुखार होंगे; तुझे मच्छर नहीं काटेंगे, स्वयं श्रीकृष्ण ही मच्छर बनकर तुझे काटेंगे; फिर भी मैं तेरे सोनेके समय मछहरी लगवाता हूँ, मलेरियाके आनेपर कुनैनकी दवा दिलाता हूँ, उसी प्रकार मैं श्रीपोद्दार महाराजके ग्रह-नक्षत्रोंकी भी शान्ति-व्यवस्था कर रहा हूँ।"

पू.गुरुदेवका उत्तर पूर्णतया सटीक था। फिर वे मुझे इसी प्रसंगमें अन्य तथ्य भी बताने लगे। वे कह रहे थे – "भैया ! मेरे जीवनमें आठ ऐसे महासिद्ध सन्त आये हैं, जो ज्ञान एवं भक्तिकी परमोच्च भूमिकाओंका निर्वाह कर रहे थे। उनमेंसे कुछ अब भी जीवित हैं। परन्तु अभी तक मेरे संपर्कमें ऐसा एक भी ऋषि-ब्राह्मण नहीं आया जो अधिदैव-जगत्के देवताओंकी मंत्रसिद्धि रखता हो। अधिदैव-जगत्के सभी देवगण निश्चय ही मंत्रस्वरूप होते

हैं। पहले कर्मकाण्ड करनेके पूर्व ब्राह्मणोंको गुरु लोग यह शिक्षा अनिवार्यरूपमें देते थे कि वे मंत्रोंके पुरश्चरण करके मंत्र सिद्ध करें। मंत्रसिद्धिके द्वारा जिन-जिन देवगणोंका वे प्रत्यक्ष कर लेते थे, उन्हींका अनुष्ठान वरण करते थे। आजकल तो तिलक-छापा लगाया, नाममात्रकी संध्या-गायत्री की, कुछ संस्कृतके श्लोक उच्चारण करना सीख़ा और ब्राह्मण कर्मकाण्डी आचार्य हो जाता है। इसी कारण अधिकांश ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित कर्मकाण्ड वाञ्छित फलदायी नहीं होता और सर्वत्र ब्राह्मणोंका तथा उनके कर्मका उपहास हो रहा है। इसीलिये देवजगत्के प्रति भी सर्वत्र अनास्था प्रसरित हो रही है। देवताओंका मंत्र ही कलेवर होता है, मंत्र ही उनके प्राकट्य, उनके तदाधीन आचरण, और उनके वरदानमें हेतु होता है। मुझे अबतक एक भी ऐसा ब्राह्मण-ऋषि नहीं मिला, जिसने किसी एक मंत्रका ही सांगोपांग पुरश्चरणकर उसे सिद्ध कर लिया हो। अतः इस अनुष्ठान-कर्मका मेरा एक प्रयोजन यह भी है कि मैं मेरे प्रति निष्कपट इन सात्विक ब्राह्मणोंसे इस प्रकार विधि-विधानपूर्वक देवाराधना कराऊँ, जिससे मंत्र सिद्ध होकर आवाहन करनेपर उस देवताको साक्षात् प्रकट होना पड़े। वह देवता इनके द्वारा समर्पित अर्घ्य, पाद्य, आचमन, धूप-दीप, नैवेद्य आदिको प्रकट होकर स्वीकार करे, और प्रत्यक्ष होकर अपना कृपा-वरदान इन्हें प्रदान करे। यह सत्य है कि श्रीपोद्दार महाराज सत्यसंकल्प हैं, उनके दिव्य चिन्मय मानस-तलमें जबतक इस अविद्यामयी मायिक सृष्टिमें रहनेका संकल्प भगवान्की योगमाया लीला-महाशक्ति द्वारा उत्थित है, उनका कोई भी अनिष्ट करनेमें समर्थ नहीं है । परन्तु हम सबकी यह अनवरत तपस्यापूर्ण देवाराधना, देवजगत्के सम्मुख की गयी हमारी विकल प्रार्थना, श्रीपोद्दार महाराजके अनन्त पारावारविहीन कृपासिन्धुको उद्वेलित तो करेगी ही। हम उनके अपने आत्मीय स्वजन सहचर हैं, हमें इस प्रकार साधनरत देखकर वे अपनी ही कृपाकी उर्मियोंमें निश्चय ही बह चलेंगे। हमारा यह स्पन्दन उनकी कृपा-लहरोंको उच्छलित करनेमें किंचित् हेतु तो होगा ही। यदि सच्ची आन्तरिक कामनासे हम उन्हें हमारेसे विलग नहीं करना चाहेंगे, तो वे दयासिन्धु, अहैतुक करुणावरुणालय हमारे साथ रहनेके, अथवा हमें अपने साथ रखनेके संकल्प-स्रोतमें बह जायेंगे। हमारे तो दोनों ही हाथोंमें लड्डू हैं। यदि वे हमें अपने साथ रखनेका संकल्प करलें और यह माया-भूमि त्याग दें,

तब भी हमारा अशेष हित है। हम सभी इस शरीरके प्रारब्धका नाश होते ही मृत्युके उपरान्त उनके अचिन्त्य, चिन्मय लोकमें बिना किसी श्रम और आयासके पहुँच जायेंगे। और वे यदि यहाँ इस माया-लोकमें हमारे साथ सहचररूपमें कुछ कालमान और रह गये तब भी हमारा कल्याण-पथ प्रशस्त ही होगा । और कहीं भगवत्कृपावश ये दोनों बातें एक साथ सम्पन्न हो जाती हैं कि वे हमें साथ रखनेका संकल्प भी करलें और कुछ काल यहाँ और रह जावें फिर तो कहना ही क्या है ? भैया ! वास्तवमें यह सब इन पोद्दाररूप महाप्रभुकी ऐश्वर्य-सम्पुटित लीलाकी मात्र एक लहरी भर है। जब अशेषदृग् माया-मूलहारी पोद्दार महाराज स्वयं ही उपाय निर्धारण करने चलेंगे तब उपाय क्यों नहीं मिलेगा ? उनकी अचिन्त्य लीला-महाशक्तिने तो हम सभीको श्रीपोद्दार महाराजसे मिलानेका लीला-क्रम निर्धारित कर ही रखा है। यदि ऐसा लीला-क्रम नहीं होता तो श्रीपोद्दार महाराजका आत्मीय स्वजनभाव हमें मिलता ही नहीं। श्रीपोद्दार महाराजको तो उस क्रमसे देख लेना भर है और उसे शीघ्रातिशीघ्र काल-क्रममें प्रकट भर करना है।

मैं अश्रु-सिक्त नेत्रोंसे पू.गुरुदेवके आनन-सरोजको एकटक निहार रहा था और अनवरत झरती उनकी मधु-स्निग्ध वाणी सुनता जा रहा था। मेरे रोम-रोममें नवजीवन संचरित हो रहा था। मुझे पूर्णतया शंका-निवृत्त पाकर पू. गुरुदेव अपने अन्य कार्यक्रममें लग गये।

दूसरे दिवस ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही सभी ब्राह्मणों द्वारा देवोंका अनुष्ठान प्रारंभ करना था। इस अनुष्ठानमें यथासमय पूर्ण पवित्रतापूर्वक नैवेद्य सम्पादन कराना, सभी पूजा-सामग्रीका अग्रिम संचयन करना, उन्हें परम पवित्र रीतिसे गंगाजलसे संशुद्ध एवं संस्कारित करना, आदि इतने कार्य थे कि उन सबको पू.गुरुदेवकी पूर्ण सात्विक पवित्र मनोभूमिके अनुरूप सम्पादित करनेके लिये प्राणपणसे जुटने एवं आठों-याम सजगतापूर्वक श्रम करनेवाले लोगोंकी पूरी पंक्ति आवश्यक थी। भाई राधेश्याम पालड़ीवाल, भाई कुञ्जबिहारी, भगतजी राधेश्याम धानुका, भाई रामसनेहीजी आदि अनेकों भ्राताओं एवं साथ ही अपना निजका गृहकार्य त्यागकर इस तपस्यामें निरत अनेकों माताओंने अनवरत छः मासतक प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्तके पूर्व ही उठकर एवं मध्य रात्रितक जागकर कठोर परिश्रमपूर्वक ब्राह्मणोंको सहयोगकर अनेकों पुरश्चरण कराये और विलक्षण देवाराधना सम्पन्न हुई ।

प्रथम दिवसकी पूजाका एक शब्दचित्र पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत कर दे रहा हूँ, जिसे मैंने प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे देखा है। श्रीमोतीजी पारीक जो अतिशय सत्त्वसम्पन्न, ब्रह्मचर्यव्रतधारी, तितिक्षाकी मूर्त्ति, अतिशय विनयी, सदैव प्रसन्नचित्त ,कठोर परिश्रमी, पू.गुरुदेवपर पूर्ण निष्ठा रखनेवाले, निष्कपटहृदय ब्राह्मण थे, पूजनका प्रारम्भ करते हुए गणेशार्चन करवा रहे थे। उनके पार्श्वमें ही श्रीपोद्दार महाराज अपनी धर्मपत्नी सहित विराजित थे। अन्य ब्राह्मण पूर्वतः ही आचमन, स्वस्ति-वाचन, दीप-प्रज्वालन, अर्घ्य-स्थापनादि कर्म सम्पादित कर चुके थे। सभी ब्राह्मण मुण्डित-मस्तक, गोखुरके समान चौड़ी शिखायुक्त, ललाटपर पू.गुरुदेव द्वारा प्रदत्त ब्रजरजकी वटिकाका लेपन किये, कुकुम-केसरकी बिन्दी एवं तिलक लगाये, कंधेपर अँगोछा रखे, आर्श्व-पार्श्वमें विराजित थे। नवीन निर्मित काष्ठकी चौकीपर शुद्ध लाल रेशमी वस्त्र आस्तृत था और उसपर श्रीगणेशजीकी स्वर्णप्रतिमा विराजित थी । चतुर्दिक् धूपका अतिशय सुवासित धूम व्याप्त था। अखण्ड दीपक जगमगा रहा था। ब्राह्मणगण वेदध्वनि कर रहे थे। नतजानु अंजलि-बाँधे श्रीमोतीजी पारीकने श्रीगणेशप्रतिमाके सम्मुख इस प्रकार प्रणाम किया मानो उनके सम्मुख सचमुच ही श्रीगणेश प्रत्यक्ष हो चुके हों। पू.गुरुदेव के प्रति अतिशय समर्पण और पू.पोद्दार महाराजके प्रति विलक्षण सन्तोपम श्रद्धाने उनके रोम-रोममें दिव्य देवदर्शनका उन्मेष कर दिया था। सद्योदित बालरविके समान सिन्दूरी वर्णमें श्रीगणेशजीको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख निरखकर श्रीमोतीजी चमत्कृत थे, वे किंचित् उन्मत्त थे और श्रीगणेशजी महाराजके अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्यको सम्मुख प्रकट पाकर अपनी तनकी सुध-बुध ही भूल गये थे। श्रीमोतीजीकी ऐसी विलक्षण दशा सभी ब्राह्मण, आश्चर्य-विस्फारित एवं अश्रुसिक्त नेत्रोंसे देख रहे थे। पू.गुरुदेव कुछ ही दूरीपर खड़े समग्र दृष्य देख रहे थे। उन्होंने तीखी आवाज लगायी, गंगाजल-निर्मित प्रसाद उपस्थित किया जाय। एक बहिन सचैल-स्नात, स्वच्छ धौत वस्त्र धारण किये, भालपर सौभाग्यसिन्दूर और ललाटपर बिन्दी लगाये, उन्मुक्तकेशी, रजत थालीमें तीन-पाव प्रसाद लेकर तत्क्षण समुपस्थित हुई। वह पार्श्वके कक्षसे जहाँ पूजाकी सभी सामग्री पृथक्-पृथक् पात्रोंमें, गौके गोबर और पीली मिट्टी मिलाकर बनाये लेपसे चौकाकर, अतिशय स्वच्छ वस्त्रोंमें ढँकी, पृथक्-पृथक् काष्ठ-चौकियोंपर रखी थी, ले आई । सेवक एवं सेविकाएँ इतनी पवित्रता बरत रहे थे कि खाँसी भी उस कक्षसे दूर, बाहर जाकर करते

थे और खाँसी आनेमात्रसे हाथ-पैर धोकर आचमन करके तब पूजा-उपकरण-कक्षमें प्रवेश करते थे। पू.गुरुदेवका संकेत पाते ही तत्परतापूर्वक वाञ्छित सामग्री समुपस्थित कर देते थे। पार्श्वमें वृक्षोंके नीचे शुद्ध भूमिपर धौत टाटके विशाल आसनोंपर स्वच्छ स्नात, पवित्र कटिया-रेशमके वस्त्र पहने, अनेक सेवक – कोई वाञ्छित पुष्पमालायें अग्रिम गूँथ रहे थे, कोई डलियाओंमें भिन्न सुगन्धित पुष्पराशि संचितकर ला रहे थे, कोई तुलसीदल, कोई बिल्वपत्र संकलित कर रहे थे। प्रत्येक बिल्वपत्रको, तुलसीदलको उनके वृक्षोंसे इस प्रकार तोड़ा जाता था, मानो वृक्ष मात्र उद्भिज जन्तु न होकर, स्वयं देवस्वरूप हों। साधक तुलसी एवं बिल्ववृक्षको पहले प्रणाम करता था, फिर उसे शुद्ध जलसे सिंचित करता था, एवं तब प्रार्थनाके श्लोकोच्चारणकर अतिशय विनयपूर्वक एक-एक दलको अतिशय श्रद्धासहित संचयन करता था।

पू.गुरुदेवकी दृष्टि इतनी जागरूक होकर निरीक्षण कर रही थी कि किसीके भी द्वारा तनिक-सा प्रमाद होते ही वह प्रमाद उनकी पकड़में आ ही जाता था और वे उसे सुधारने तथा उसकी पुनरावृत्ति कदापि नहीं हो, इसका कठोर अनुशासन कर देते थे। नौसिखिये व्यक्तिके स्थानपर तत्क्षण ही किसी अभ्यस्त साधकको उसे शिक्षित करने भेज दिया जाता था।

पू.पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी (अ.सौ.माताजी) एवं उनकी पुत्री (अ. सौ.सावित्रीबाई) रात्रिपर्यंत एक क्षण भी सोई नहीं थी। परिवारके सभी परिजन जब जागे हों तो वे शयित हों भी कैसे ? फिर भी रात्रि कब, कैसे समाप्त हुई, किसीको भी उत्साहके कारण ज्ञात नहीं हुआ था।

देवगृह-कुटी, जहाँ ब्राह्मण उपासना कर रहे थे, कदलीवृक्षोंसे सज्जित की गई थी। कदली-स्तम्भोंपर यथास्थान सूक्ष्म सूतलियोंमें ग्रथित आम्रपल्लव टँगे थे। प्रथम पूजन अति संक्षेपमें ही श्रीपोद्दार महाराज और उनकी अ.सौ. पत्नीके द्वारा सम्पन्न कराया जाय – पू.गुरुदेवकी ऐसी इच्छा थी। अतः श्रीपोद्दार महाराजके सहित उनकी धर्मपत्नी ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही स्नानकर आसनपर सुविराजित हुई पूजा कर रही थीं। श्रीमोतीजी पारीकको अतिशय भावपूर्ण मुद्रामें गणेशपूजनमें निरत देख श्रीपोद्दार महाराज अति संक्षेपमें सभी प्राथमिक पूजा समाधान कर रहे थे, परन्तु इस प्रकार, जैसे उनके हाथोंसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा रही हो, तथा स्वयं वे इस लोकमें न हों। इस प्रकार पूरे एक प्रहर दिन चढ़नेतक शास्त्रीय कर्मकाण्ड पूरा होते ही एक साथ ढोलक,

शंख, कांस्य मँजीरे आदि वाद्य बजने लगे, आरतीके पश्चात् विशुद्ध प्रेमरस-भावित-चित्त बगीचेवासी भगवन्नाम संकीर्त्तन करते थे। चाहे किसी भी देवताकी पूजा, कोई भी त्यौहार हो, चाहे शिवरात्रि एवं नवरात्रपूजन ही क्यों न हो, यहाँकी नित्यकी ही परम्परा रही थी कि पहले तो तत्तद् देवतागणके नामसे संकीर्त्तन प्रारंभ होता था किन्तु उसका पर्यवसान सदैव 'राधे-राधे' नामध्वनिमें ही होता था। यह रांधे-राधे नामध्वनि प्रारंभ होते ही सभी बगीचेवासी उन्मत्त-से हुए, खड़े हो जाते थे। जिसके हाथमें जो भी वाद्य आ जाय, उसे वे सभी आबाल-वृद्ध एक प्रमत्त लय और तालमें बजाने लगते थे, उनके पैर एक विलक्षण प्रकारसे कूदने-उछलने लगते थे, अंग-अंग प्रेमसे थिरक उठते थे, और राधा-राधा शब्द-ध्वनि इतने उच्च स्वरसे होने लगती कि उसकी प्रति-ध्वनि सम्पूर्ण अन्तरिक्ष और नभको भेदती हुई शब्दब्रह्मको अपनेमें लीन कर लेती थी । उस तुमुल 'राधे-राधे' के आनन्द-कोलाहलसे पशु-पक्षी, वृक्ष एवं लताएँ, यहाँतक कि जड़ भूमि-भवन भी पुलकित हो उठते थे, फिर मानवकी तो बात ही क्या ? पू.गुरुदेव एक कांस्य झालर और उसे निनादित करनेके लिये काष्ठ-दण्ड लेकर उस महान् प्रेमभरे आयोजनका नेतृत्व सँभाल लेते थे। जो भी इस उद्दाम संकीर्त्तनके प्रत्यक्षदर्शी आज भी जीवित हैं, वे मेरे इस कथनको सर्वथा अतिशयोक्ति नहीं मानेंगे कि उन दिनों पू.गुरुदेवके नेतृत्वमें जब यह कीर्तन सम्पन्न होता था तो कालकी गति स्तंभित हो उठती थी । उद्दाम नर्तन एवं संकीर्त्तन करते लोगोंको यह पता ही नहीं चलता था कि यान्त्रिक घड़ी कब बारहसे एक बजा चुकी है और कब मध्याह्नसे सायंकाल हो आया है । यह संकीर्त्तन जब भी प्रारंभ हुआ है, तीन-साढे तीन घण्टेके पूर्व तो सम्पूर्ण होता ही नहीं था। जब इसे विराम देना होता था तो पू. गुरुदेव श्रीराधा बाबा ही विराम देते थे, अन्यथा संकीर्त्तन करनेवालोंका रसप्रवाह तो कभी विरस होता ही नहीं था। उन्हें तो इस संकीर्तनकी अवधिमें थकान लगती ही नहीं थी। हाँ, ढोल अथवा खोल बजानेवाले वादककी अँगुलियाँ चिरकर रक्त प्रवाहित भले ही करने लगें, परन्तु उसे न तो इसका ज्ञान ही होता था, न अँगुलियोंको विरमित करनेकी रुचि ही उसे अनुभूत होती थी। कांस्यकी झाँझ बजानेवालेकी हथेलियोंमें फफोले पड़ जाते थे, और फफोले फूट कर रक्तस्राव हो उठता था, फिर भी झाँझ बजाना वह विरमित नहीं कर पाता था। कोई ऐसी रसमयी सुधा चतुर्दिक् प्रवाहित होती रहती थी जो सभीको चिन्मय

रस-सागरमें डुबो देती थी और यंत्रवत् शरीरकी श्रमसाध्य क्रियायें घटित होती रहती थीं ।

हाँ, इस रसप्रवाहमें निमग्न होनेकी अतीव लालसा रखनेपर भी उस दिवस श्रीमोतीलालजी पारीक आदि ब्राह्मण पू.गुरुदेव द्वारा अवश्य संकीर्त्तनसे निवारित कर दिये गये थे , क्योंकि उन्हें अपनी जप एवं पाठसंख्याएँ एक निश्चित कालावधिमें पूर्ण करनी ही थीं और आज प्रथम दिवसके पूजन-संयोजनमें ही कालातिरेक हो चुका था। अतः वे सभी अतिशय लालायित होने पर भी अपने मनको इस रस-प्रवाहमें निपतित होनेसे रोक रहे थे।

वैष्णव पाठकों ! पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा और श्रीपोद्दार महाराज ऐसे रसीले सन्त थे कि इनके प्रति जो भी अपना मन-प्राण न्यौछावर कर दे, उसके लिये इस तुच्छातितुच्छ जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय संसारका मूल्य ही क्या था ? ये दोनों उस ऐश्वर्य-ज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें तत्मय थे, जिसमें तत्व, अतत्व क्या है – इसके अनुसन्धानकी आवश्यकता ही नहीं थी । वस्तुस्थिति भी भला क्या अनुसन्धानकी अपेक्षा रखेगी ? वह तो जो है, वही रहेगी ही। जब ब्रजेन्द्रनन्दन और उनकी प्राणप्रिया रासेश्वरी श्रीराधा ही आत्माकी आत्मा हैं, प्रियोंके प्रियतम हैं, इन्हींके लिये देहादि भी प्रिय हैं, इनसे प्रेम करनेमें ही जब जीवनकी परम सार्थकता है, तो इन ब्रजेन्द्रनन्दनके प्रेममें मत्त सन्तोंकी सन्निधि के सम्मुख अन्य वस्तु अर्थ ही क्या रख पावेगी ?

इस तरह पू.पोद्दार महाराजके जीवनरक्षार्थ प्रारंभ किये गये अनुष्ठान-संस्कारका प्रथम दिवस समापन हुआ था।

इसी प्रकार इन अनुष्ठान-कर्त्ताओं और उनके सहयोगियोंके छःमास क्षणोंके समान व्यतीत होगये। प्रत्येक रात्रिमें उद्दाम नाम-संकीर्त्तन हुआ करता था। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं संकीर्त्तनमें खड़े होकर नेतृत्व करते थे। पू. गुरुदेव के बायें हाथमें कांस्य घण्ट(टकोरा) रहता था, दूसरे दाहिने हाथमें लकड़ीकी हथौड़ीनुमा मोगरी। पैरोंसे ताल देते वे लयबद्ध कांस्यघण्ट (टकोरा) बजाते थे और परिक्रमावत् घूमते जाते थे। प्रथम'राधे–राधे' की ध्वनि पू. गुरुदेव द्वारा होती थी एवं तत्पश्चात् पीछे सभी लोग बोलते थे। प्रायः भावाधिक्यसे पू.गुरुदेव की आँखें मुँद जाती थीं । कीर्त्तन एवं नृत्य करते सभी लोग इतने उन्मत्त हो उठते थे कि कोई नृत्य करता बाह्यावेश-विस्मृत व्यक्ति पू. गुरुदेवपर गिर न पड़े, इसलिये चार-पाँच लोग पू.गुरुदेवके चतुर्दिक् एक घेरा

बना लिया करते थे। इस कीर्तनमें लोगोंको अनेक विलक्षण अनुभव हुए।

एक दिवस पू.पोद्दार महाराजकी पत्नी (माताजी) ने देखा कि सात-आठ वर्षकी एक अतीव सुन्दरी बालिका कीर्तन करते पू. राधाबाबाके पीछे-पीछे दोनों हाथ उठाकर नृत्य करती चल रही है। कीर्त्तनके भावावेशमें पू. गुरुदेव जिस ओर अपनी गर्दन झुकाते अथवा लटकाते हैं, उसी ओर वह बालिका भी पू. गुरुदेवकी ठीक अनुकृति करती अपनी गर्दन झुकाती है। मैयाने पास खड़ी किसी अन्य स्त्रीको कहा –"बहिन ! देख तो ! यह न जाने किसकी कमनीय बालिका कीर्तनमें प्रवेश कर गयी है, मुझे तो चिन्ता है, कहीं यह सुकोमल बालिका कीर्तनकारोंकी भीड़में कुचली नहीं जावे। इन लोगोंको तो होश ही नहीं कि इस बालिकाका ध्यान रख सकें। सभी लोग अपनी मस्तीमें नृत्य कर रहे हैं । इनके सभीके नेत्र ही मुँदे हैं। इन्हें क्या पता, कौन इनके आगे-पीछे है। पू.राधाबाबा तो इतने भावाविष्ट हैं कि उनका भाव ही सबमें संक्रमित होकर सभीको अलमस्त बना रहा है। इन उमंगभरे पागलोंकी झूमती हुई भीडमें कहीं यह बालिका बहिन, दब न जावे ! " इस प्रकार माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) उस बालिकाकी चिन्ता कर रही थीं। विद्युत्की भाँति यह समाचार समस्त स्त्रीवर्गमें फैल गया किन्तु कोई भी स्त्री उस बालिकाकी रक्षाके लिये आगे बढ़नेकी हिम्मत इसलिये नहीं कर पा रही थी कि वह बालिका पू.गुरुदेवके सर्वथा निकट थी, और उसे पकड़नेमें पू.गुरुदेवसे स्पर्श होनेका सभीको भय था । पू.गुरुदेव किसी स्त्रीवर्गका कीर्तनकारोंके मध्य इस प्रकार प्रवेश सर्वथा सहन नहीं करते थे। अतः वे सभी भाग्यवान् स्त्रियाँ जिन्होंने अ.सौ. पू.माताजीके संकेत करनेसे उस दिव्य बालिकाका दर्शन किया था, मानसिक उलझनमें ही रहीं। जब कीर्तनका विराम होगया तो मैया स्वयं उस बालिकाके पास दौड़ीं। उनके वात्सल्यपूर्ण हृदयमें यही वेदना थी कि घण्टों पू. गुरुदेवके साथ-साथ उनका हू-ब-हू अनुकरण करती एवं नृत्य करती बालिका थक गयी होगी। किन्तु देखते-देखते ही वह सबकी दृष्टिसे ऐसी ओझल हुई कि बहुत खोजनेपर भी मिली ही नहीं। मैया आश्चर्यचकित थी कि अभी तो वह बालिका यहाँ थी, अभी-अभी इसी अवधिमें कहाँ चली गयी। जिन स्त्रियोंने वह बालिका देखी थी सभीने अपना-अपना सौभाग्य माना कि राधानाम-संकीर्त्तन के मध्य उन्हें दिव्य बालिकाके दर्शन हुए।

एक भक्तको यह भी दर्शन हुए कि नेत्र मुँदे हुए पू.गुरुदेवके साथ

स्वयं श्रीकृष्ण मयूरमुकुटधारी हाथ उठाकर 'राधा-राधा' कीर्त्तन कर रहे हैं। लोग उनके पास पहुँचकर उनके भीतरसे निकल जा रहे हैं। जब कोई कीर्तनकार श्रीकृष्णके मध्यसे निकल जाता है, तो वे अति मधुर कृपावर्षी मुसकान बिखेरते हँस पड़ते हैं। कभी-कभी यह संकीर्त्तन ऐसा जमता था कि रात्रिपर्यंत जागरण हो जाया करता। कीर्तन विराम ही नहीं लेता था।

पूजा-अर्चनकालमें भी अनुष्ठानकर्ताओंको अनेक चमत्कारोंके अनुभव हुए। श्रीमोतीजी पारीकको तो प्रत्येक निशा कोई-न-कोई दिव्य अनुभव अवश्य होता था। वे प्रत्येक दिवस ही पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको अपने अनुभव बताया करते थे। श्रीशिवनाथजी दुबेको नवदुर्गाओंके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। पू.गुरुदेवको स्वयंको अनुभव हुआ कि उन्हें भगवतीने दो फल दान किये हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ था कि श्रीपोद्दार महाराजकी आयु द्वै-दश वर्ष बढ़ गयी है। वस्तुतः इस अभूतपूर्व अनुष्ठानमें सैकड़ों सेवकोंका योगदान था। बिना किसी स्वार्थकामनाके अनवरत छः माह तक अनेकोंने पूर्णकालिक और अनेकोंने अंशकालिकरूपसे अपनी सेवाएँ समर्पित करके इस अनुष्ठानको सफल बनाया था। ये सभी महाभाग्यवान् साधक इस अलभ्य तत्सुख-प्रेमभावनाके पात्र सिद्ध होगये थे, क्योंकि इन सभीने बिना किसी स्वार्थ-भावनाके अनवरत छः मासतक श्रम करके श्रीपोद्दार महाराज-जैसे महासिद्ध सन्तका हित एवं सुख सम्पादित किया था। इनके प्रयाससे ही इस अनुष्ठानकी सम्पन्नता संभव हुई थी। अनेक साधकोंका तो निस्वार्थ आठोंयामका ही श्रम एक महासिद्ध भगवत्स्वरूप सन्तपर न्यौछावर हुआ था। उन्हें तो इस साधनाका सफल हो जाना ही वाञ्छित फल था। यह स्वयंमें ही एक महासिद्धि थी और इस सिद्धिसे वे सब पूर्ण संतुष्ट एवं कृतकृत्य थे ।

———

प्रयागमें कुम्भमेला : पू० गुरुदेवको नावमें उद्दीपन, सिद्धजगत्‌का सन्देश

(सातवाँ अध्याय)

प्रतिवर्ष द्वादश वर्षके अन्तरालमें जब बृहस्पति बृषराशिमें और सूर्य मकरराशिमें होता है, प्रयागमें कुंभपर्व होता है। प्रयागका अर्थ ही है कि जो पवित्र भूमि प्रकृष्ट यज्ञोंके लिये उपयुक्त हो। इसीलिये सृष्टिके आदिमें श्रीब्रह्माजीने यहाँ प्रथम यज्ञ किया था। यहाँ सरस्वती, गंगा एवं यमुनाका संगम है और इस त्रिवेणीमें स्नान करनेवाले ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। यहाँ स्थित श्यामल अक्षयवट अपनी छायासे मनुष्योंको दिव्य सद्गुण प्रदान करता है। इसी अक्षय वटके पत्रपर लेटे भगवान् माधवके ऋषि मार्कण्डेयको दर्शन हुए थे। गोघाती, चाण्डाल, शठ, दुष्टचित्त, बालघाती, ब्रह्महत्यारे भी इस अक्षयवटके दर्शनमात्रसे चतुर्भुज माधवका दिव्यरूप पाकर वैकुण्ठमें अक्षय निवास करते हैं—पद्मपुराणादिमें ऐसे कितने ही वचन हैं।

कुम्भपर्वमें प्रयागमें त्रिवेणीमें स्नानार्थ लाखों लोग आते हैं। जब भी कुम्भका योग होता है, यहाँ गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-पण्डाल भी लगा करता है। इस वर्ष क्योंकि श्रीपोद्दार महाराज यहाँ माह-डेढ़ माह कुम्भस्नानके लिये रहनेवाले थे, अतः एक विशाल पण्डालका निर्माण हुआ था और भव्य सत्संग, कथा आदिका आयोजन था।

बात सन् १९५४ ई.की है। श्रीपोद्दार महाराज पौष शुक्ला सप्तमी तदनुसार ११ जनवरीको प्रयाग पहुँचे। उनके साथ उनका परिवार और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो थे ही, अनेक सत्संगी भाई-बहिन भी थे। १४ जनवरीको तीन दिवस पश्चात् ही मकरसंक्रान्तिका प्रथम पर्व-स्नान पड़ रहा था, अतः मैं भी गोरखपुरसे पू. गुरुदेवके साथ ही चला आया था।

हम सभी लोग निरे प्रभात ही रेल द्वारा गोरखपुरसे प्रयाग पहुँचे थे अतः सर्वप्रथम स्नानार्थ त्रिवेणीकी ओर चल पड़े थे। यमुनाघाटपर पहलेसे ही नावोंकी व्यवस्था थी, अतः एक बड़ी नावमें श्रीपोद्दार महाराजका परिवार, पू. गुरुदेव एवं हम लोग जो सेवामें थे, आरूढ़ थे। सत्संगी भाई दूसरी नावोंमें

सभीको दण्डित अथवा पुरस्कृत कर रहे हैं। जब हम सभी विषयी-पामरोंकी यह स्थिति है, फिर आपका अतीव भगवच्छरणांगत पाञ्चभौतिक शरीर, अथवा पू. पोद्दार महाराजका चिन्मय-भगवत्संस्पर्शप्राप्त शरीर, क्या इन मायिक, अविद्यामूलक, जड़ नक्षत्रोंकी गति द्वारा नियन्त्रित है ? मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि व्यर्थ ही आप प्रेमजन्य अनिष्टाशंका कर रहे हैं। पू.पोद्दार महाराजके तो रोम-रोममें सर्वस्रष्टा, सर्वनियन्ता, सर्वावतारावतारी, स्वयं भगवान् भरे हैं। नित्यसिद्ध, परमानन्दविग्रह, ब्रजेन्द्रनन्दन, स्वरूपानन्दास्वादनपरायण, मायातीत श्रीहरि ही जब स्वयं जिसके अन्तःकरण और बहिःकरण-विवरोंमें प्रविष्ट होगये हों तो फिर उनमें अनिष्टके प्रवेशकी गुंजाइश ही कहाँ है ? श्रीपोद्दार महाराजका यह शरीर तो ब्रजराजनन्दनकी लीलास्थली है। बाबा ! जब यह आपकी ही निष्ठा है, तो फिर आप इस प्रकार व्यग्र एवं उद्विग्न क्यों हैं ?"

अत्यन्त कलुषपूर्ण, माया-पंकमें लिप्त, घृणित-जीवन मेरी बालोचित वाचालता सुनकर पू.गुरुदेव मुसका उठे । वे कहने लगे – "भैया ! तेरी बात पूरी सत्य है। किन्तु जब पोद्दार महाराजको साक्षात् भगवान् नहीं देखकर, पू. अ.सौ.मैया (पोद्दार महाराजकी पत्नी) उनके भोजन-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्नान-संध्या – सबकी यथोचित व्यवस्था करती हैं, वे ऋतु-अनुसार शिशिरमें ऊनी वस्त्र पहनते हैं, रजाई ओढते हैं, अग्नि तापते हैं, तो जहाँ शरीरकी यथायोग्य सभी व्यवस्था होती है, तब ग्रह-नक्षत्रों और उनके अधिदेवोंकी शान्तिकी यथायोग्य व्यवस्था भी तो होनी ही चाहिये।"

"भैया ! यद्यपि मैं इसे स्पष्ट जानता हूँ कि तुझे मलेरिया बुखार नहीं आयेगा, श्रीकृष्ण स्वयं ही तेरा बुखार होंगे; तुझे मच्छर नहीं काटेंगे, स्वयं श्रीकृष्ण ही मच्छर बनकर तुझे काटेंगे; फिर भी मैं तेरे सोनेके समय मछहरी लगवाता हूँ, मलेरियाके आनेपर कुनैनकी दवा दिलाता हूँ, उसी प्रकार मैं श्रीपोद्दार महाराजके ग्रह-नक्षत्रोंकी भी शान्ति-व्यवस्था कर रहा हूँ।"

पू.गुरुदेवका उत्तर पूर्णतया सटीक था। फिर वे मुझे इसी प्रसंगमें अन्य तथ्य भी बताने लगे। वे कह रहे थे – "भैया ! मेरे जीवनमें आठ ऐसे महासिद्ध सन्त आये हैं, जो ज्ञान एवं भक्तिकी परमोच्च भूमिकाओंका निर्वाह कर रहे थे। उनमेंसे कुछ अब भी जीवित हैं। परन्तु अभी तक मेरे संपर्कमें ऐसा एक भी ऋषि-ब्राह्मण नहीं आया जो अधिदैव-जगत्के देवताओंकी मंत्रसिद्धि रखता हो। अधिदैव-जगत्के सभी देवगण निश्चय ही मंत्रस्वरूप होते

विहीन सागरकी उर्मियोंमें बहने लगे हैं । माधुर्य-सिन्धु उनके अन्तःकरणमें उद्वेलित हो उठा था।

बहुत दिवस पुरानी बात है, तनिक प्रसंग से पृथक् हो रहा हूँ। मैंने पू. गुरुदेवसे पूछा था –''क्या आप अपने प्रियत म ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म पुरुषोत्तमके रूपमें मानते हैं ?'' तो उन्होंने इसका उत्तर दिया था–''भैया ! तुझे सत्य कहता हूँ माधुर्य-मसृण चित्तमें तत्त्वज्ञानके लिये टिकनेको स्थान ही नहीं होता। मेरा दूसरा प्रश्न था–''बाबा ! क्या आपके प्यारके उद्दीपनमें और उसे सर्वातिशय अनुभव करनेमें आपके प्रियतम श्यामसुन्दरका अभूतपूर्व सर्वजयी, मन्मथ-मथन सौन्दर्य हेतु है ?'' तो इसका उत्तर उन्होंने दिया था–''सौन्दर्य प्रथमतः तो मात्र नेत्रेन्द्रियग्राही ही होता है, और प्रेम आत्माका आस्वादन है। फिर एक नेत्रेन्द्रियजन्य सौन्दर्य होता है और दूसरा महाभावगत सौन्दर्य जिसे प्रेमप्लावित हृदय ही अनुभव करता है, श्रीकृष्णका सौन्दर्य प्रीतिजन्य है, प्रीतिग्राही है, इन्द्रियग्राही है ही नहीं। मेरे भाव-शरीरकी इन्द्रियाँ भी प्रीति द्वारा ही सृष्ट होती हैं, वे मायिक देहजन्य इन्द्रियाँ हैं ही नहीं।'' मैंने पुनः प्रश्न किया था, ''तो क्या आपके चित्तकी गति भगवत्ताकी स्फूर्त्तिसे श्रीकृष्णके प्रति प्रेमप्रवाहित होती है ? '' इसपर भी वे निषेधात्मक रूपमें अपना मुख हिला दिये थे। मैं जिज्ञासु हो उठा था। सौन्दर्य-निबन्धन, भगवत्ताकी स्फूर्त्ति, दैहिक इन्द्रियग्राही सम्बन्ध, तत्त्वज्ञान – जब इनमेंसे एक भी उनके प्रेममें हेतु नहीं, फिर उनका अन्ततः अपने प्रियतम नीलसुन्दरसे ऐसा अपरिसीम प्रेम किस हेतुसे है ? किस हेतुसे उसकी वह सतत, निर्बाध गति है ? तो मेरे इस प्रश्नका उन्होंने एक ही उत्तर दिया था कि '' श्रीकृष्णके प्रति उनका प्रेम हेतुरहित है। श्रीकृष्ण उनकी आत्माकी आत्मा हैं और आत्मा हेतुरहित सबको निरतिशय प्यारी होती है। हाँ, उन्हें ये श्रीकृष्ण योगमायाका आश्रय लेनेके कारण देहधारी और अपनेसे भिन्न अवश्य प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः वे श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, अतः श्रीकृष्णके सर्वाधिक प्रिय हैं और श्रीकृष्ण उनकी आत्मा हैं अतः उन्हें वे सर्वातिशय प्रिय हैं। शब्द इतना ही इस विषयमें निदर्शन कर सकते हैं। शेष सब सौन्दर्य, सद्गुण, माधुर्य, ऐश्वर्य मात्र अलंकरण भर हैं।''अस्तु, ...मैं मेरे गुरुदेवके प्यारको नितान्त अन्धस्नेहकी संज्ञा दिया करता था।

पुनः प्रसंगपर आता हूँ। पू.गुरुदेवकी उन दिनों विलक्षण स्थिति थी।

कोई दूरसे भी यदि "**भानुदुलारी, गोपिका प्यारीं, कृष्ण प्राणधन श्रीराधे** "यह संकीर्त्तन गुनगुना देता, वे भाव-समाधिस्थ हो जाते थे। फिर उन्हें बाह्य होश नहीं रह पाता था। अतः मेरे गायनने पू.गुरुदेवके प्राणतन्तुओंको खींचकर बलात् अपने प्रियतमके चरणोंसे प्रेम-निबद्ध कर दिया था। उनके नितान्त अन्धस्नेह्की स्रोतस्विनी उमड़ उठी थी। उनके हाथ आलिंगन करनेकी मुद्रामें ऊपर उठ गये। जैसे कलिन्दनन्दिनीकी उछलती लहरोंपर उनके प्रियतम स्थित हों, वे अपने प्रियतमकी व्यक्त मूर्त्तिको आलिङ्गन करने उद्यत हो गये। वे नावपर खड़े हो गये थे और यमुनामें कूदनेको समुत्सुक हो उठे थे। मैंने जैसे ही यह दृश्य देखा, मैं उन्हें अपने बाहुओंमें बाँधनेको उद्यत हो उठा। मैं उन्हें अपने बाहु-बन्धनमें जकड़ूँ, इसके पहले ही पोद्दार महाराज क्रियाशील हो उठे। उन्होंने अत्यन्त बलपूर्वक पू गुरुदेवका हाथ पकड़ लिया और अति उच्च स्वरसे बोले –"बाबा ! आप स्वामी चक्रधरजी हैं, आप मेरे साथ त्रिवेणीसंगममें स्नान करने जा रहे हैं। यह प्रयागराज तीर्थ है।" श्रीपोद्दार महाराज अनेक आवृत्ति कर-करके इन्हीं शब्दोंको पू गुरुदेवके कानोंमें दोहरा रहे थे। श्रीपोद्दार महाराजकी वाणी इतनी तीव्र एवं ओजस्वी थी, साथ ही उनका पू गुरुदेवका हाथ पकड़ना इतना सुदृढ़ संकल्पभरा था कि पू गुरुदेवका उद्दीपन कुछ ही क्षणोंमें शिथिल हो गया।

मैं अपनी क्रियापर बहुत लज्जित था। सचमुच ही मुझसे भूल हो गयी थी, कहीं पू.गुरुदेव यमुनामें गिर जाते, कौन उन्हें बचाता ? यद्यपि वे कुशल तैराक थे, फिर भी भावावेशकी अवस्थामें कुछ भी अनहोनी संभव थी। मैंने अतिशय लज्जासे अवनत हो, पू.पोद्दार महाराजकी ओर देखा। मैंने देखा – परम क्षमाशील उनका हृदय मेरे कर्मको क्षमा कर चुका है। वे वात्सल्यभरे मेरी ओर निहार रहे थे । उनके लिये तो अत्यधिक असीम मात्रामें पू.गुरुदेवके स्नेहका यह प्रवाह कोई आश्चर्यका विषय था ही नहीं। हाँ, उनके पार्श्वमें बैठी माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) अवश्य ही भयभीत हो उठी थीं और मुझे डाँटने लगी थीं। यह सब प्रत्यक्ष देखकर मैं तो अपनेको परम धन्यभाग्य समझने लगा। मैं मन-ही-मन पुनः श्रीमद्भागवतका यह श्लोक गुनगुना उठा

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्।।

(श्रीमद्भा०१० ।९ ।२० ।।)

जिस कृपा-वैभवका आस्वाद पू. पोद्दार महाराज और मेरे पू. गुरुदेवको हे श्रीकृष्ण ! तुमने कराया, उसे सचमुच ही आजतक भगवान् नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न, प्रापञ्चिक भक्तोंके आदिगुरु जगत्-विधाता ब्रह्माने नहीं पाया, कदापि नहीं पाया; आत्मस्वरूप भगवान् शंकर भी उसे अनुभव नहीं कर सके, और वक्षस्थल-विलासिनी लक्ष्मीको भी वह आस्वाद नहीं ही मिला। मुक्तिपर्यंत पुरुषार्थदाता हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय हो।

++ + ++

उसी दिवसकी दूसरी घटनाका उल्लेख कर रहा हूँ। इसी प्रयागयात्रामें पू. पोद्दार महाराजने श्रीराधाबाबाके निवासकी व्यवस्था अपने निवाससे किञ्चित् दूरीपर की थी। श्रीराधेश्यामजी धानुका जिन्हें हमलोग श्रद्धासे भगतजी कहते हैं, पू.गुरुदेवके द्वारपाल थे। पू.गुरुदेवकी सेवामें निरन्तर रहना ही उनका कार्य था। मैं तो मात्र कुछ दिवसोंके लिये ही प्रयाग गया था, फिर भी क्योंकि मेरे सर्वाधिक आकर्षणके केन्द्र पू.गुरुदेव ही थे, मैं पू.गुरुदेवके पास ही आसीन, उन्हींसे लीला-वार्त्ता सुन रहा था। श्रीपोद्दार महाराज तो आते ही अनेक कार्यक्रमोंमें व्यस्त हो गये थे। उन्हें गीताप्रेस-पण्डालमें श्रीमद्भागवतके १०८ सप्ताह पारायणोंकी आवृत्ति करानी थीं, रामचरितमानसके अनेक नवाह आयोजित करने थे। फिर सत्संग-प्रवचन, कथा-संकीर्त्तनोंकी स्थान-स्थानपर इतनी धूम थी कि उन्हें बड़े-बड़े महात्मा अपने-अपने पण्डालोंमें व्याख्यानोंके लिये भी ले जाने आते थे। इन सबके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी,स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी, श्रीपथिकजी महाराज, श्रीरामकिंकरजी आदि अनेक सन्त एवं विद्वान् भी उन्हें घेरे थे। इसके उपरान्त श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन और श्रीजवाहरलालजी नेहरू आदि राजनेताओंसे भी उन्हें मिलना था। 'गोवधबन्दी' के आन्दोलनकर्त्ता भी उन्हें अपना नेता बनाये थे।

पू.गुरुदेव एकान्तमें थे और प्रायः हम लोगोंसे ही उनकी सत्संग-वार्त्ता चलती रहती थी। पू.गुरुदेवकी चित्तभूमिमें तो अनन्त लीला-महोदधि सदैव ही उफनता रहता था और उनके प्रियतम श्रीकृष्ण नव-नव प्रेमावेशसे विभूषित सदैव ही उनसे क्रीड़ा-कौतुक करते रहते थे। इस प्रकार पू.गुरुदेव काय-मनो-वाक्यसे सदा अपने प्राणप्रिय नीलसुन्दरमें ही तन्मय रहते थे। कभी वे मुझसे पद-गायन सुनने लगते, कभी स्वयं गाने लगते। प्रेमावेशसे प्रस्वेदकण उनके भालपर, कपोलोंपर, चिबुकपर झलमल करने लगते।

उस दिन भी उनकी मुझसे बात चल रही थी। वे मेरे सम्मुख अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी एक अति मनोहर लीला सुना रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे क्षीरसिन्धुके मन्थनसे सुधा निकली हो और मोहिनी अवतार लेकर स्वयं श्यामसुन्दर ही अपने हाथों हमें पिला रहे हों। किन्तु मेरा अनुमान था उस सुधामें भी वह स्वाद नहीं रहा होगा, जो स्वाद हमें तब मिलता था जब पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा परम प्रेम-तन्मय हुए अपने प्रियतम नीलमणिकी लीलाएँ हमें सुनाते थे। और उस परम चिन्मयी रस-सुधा-धाराका हम भाग्यवान् सतृष्ण पान करते थे।

उस दिन ऐसा ही अवसर मुझे प्राप्त हो गया था। वे लीला सुनाते मुझे कह रहे थे – गोपी अपने प्राणधन प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके स्मितसमन्वित मुखचन्द्रको निरखनेमें तन्मय है। यमुनाका परम पुनीत विलक्षण सुन्दर घाट है। अहा ! उस श्रीकृष्णानन-अम्भोजपर बिखरी कुञ्चित कुन्तलराशिकी शोभा निहारनेमें तन्मय गोपीके हृदयमें प्रीतिके कैसे निर्मलतम भाव उफन रहे हैं। गोपीके लिये अपने प्रियतमकी तृप्ति, अपने प्रियतमका सुख, अपने सुखकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् है। उसका सुख विनष्ट हो जाय और उससे उसके प्रियतमके सुखकी संभावना दिखती हो तो गोपीका रोम-रोम उसके लिये सदैव प्रस्तुत रहता है। गोपीको यह त्याग-भावना करनेका कोई प्रयास अथवा चेष्टा नहीं करनी होती, उसका तो यह चिरन्तन स्वभाव है। अवसर उपस्थित होते ही गोपीके हार्दिक प्रेमका यह स्वभाव तत्क्षण ही उसकी चेष्टा में व्यक्त हो जाता है। पू.गुरुदेवकी सरस वाणी प्रवाहित हो रही थी। वे वैसे तो मौन थे, परन्तु यदा-कदा जब लीला-प्रवाह का वर्णन करने लगते तो उनकी वाणी भी स्फुट शब्दोंमें मुखर हो उठती थी। वैसे स्लेटपट्टी और वर्त्तनी उनके हाथमें रहती और एकाध शब्द उस स्लेटपर अंकित भी होते ही थे। हम दोनों ही परस्पर रस-तन्मय थे। अचानक श्रीभगतजीके आगमनने हमारी रस-तन्मयता तोड़ दी। हम दोनोंकी दृष्टि श्रीभगतजीकी ओर फिर गयी थी। वे कह रहे थे कि एक साधु पू.गुरुदेवसे मिलनेकी इच्छा कर रहे हैं ।

पू.गुरुदेव वार्त्ता स्थगितकर उन समागत अतिथि साधुका सम्मान और स्वागत करने उठ पड़े। मैंने देखा –"साधु तेजस्वी थे और गैरिक वस्त्रधारी थे। " पू.गुरुदेवने उन्हें आसन दिया। आसन ग्रहण करनेके पश्चात् साधुने अतिशय स्नेहकी दृष्टिसे पू.गुरुदेवकी ओर देखा। पू.गुरुदेवने पट्टीपर लिखकर

मुझसे पढ़कर महात्माजीको सुनानेके लिये कहा। मैं गुरुदेवका सन्देश पढ़कर महात्माजीको सुनाने लगा। पू.गुरुदेव का कथन था–" कैसे पधारे प्रभो ! निस्संकोच कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? "

वे साधु कहने लगे – "मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसपर तो आपको विश्वास करना ही होगा। मैं अपने कथनको सिद्ध करनेके लिये आपको कोई प्रमाण नहीं दे पाऊँगा। हाँ ! कुछ काल बादमें आपको मेरी बात पूर्णतया सत्य लगेगी। और आप मेरे प्रति कृतज्ञ हो उठेंगे। "

पू. गुरुदेवने कहा – "निस्संकोच कहिये, प्रभो ! मुझे इतना अश्रद्धालु मत समझें।"

वे साधु पुनः मुसकाये और कहने लगे–"मैं सिद्ध जगत्का सन्देशवाहक हूँ। उनका सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। श्रीपोद्दार महाराजके पास मैं पहुँचता, किन्तु वे रजोगुणी लोगोंसे घिरे हैं । अतः मैंने आपको ही यह सन्देश देना उपयुक्त समझा। आप तीर्थराज प्रयागमें कुम्भपर्वपर स्नान करने आये हैं। आप एवं श्रीपोद्दारजीके आगमनसे प्रयागराजमें वर्तमानमें स्थित सिद्ध सन्त-समाज बहुत ही आमोदित है। देखिये ! कल ही प्रथम संक्रान्ति पर्वस्नान होगा। आप पर्वस्नान करने ब्राह्ममुहूर्त्तमें सूर्योदयसे पूर्व ही पहुँचें। उस समय आपका प्रयागराजमें स्थित सिद्ध-सन्तोंसे मिलन-दर्शन तो होगा ही, इस अवधिमें स्नान करनेवाले लोगोंपर अन्तरिक्षचारी ऋषि-महर्षि भी कृपा-वर्षा करेंगे। अतः आपके साथ जो लोग आये हैं , वे भी यदि इस कालमें स्नान करेंगे तो उनका परम कल्याण होगा। मैं यही सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। आपके शुभ दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हुआ। सिद्ध-समांज एवं अन्तरिक्षचारी सन्त भी यथावसर आपसे सम्पर्क कर लेंगे।

पू.गुरुदेव उन महात्माका सन्देश सुनकर बहुत ही श्रद्धाभिभूत हो उठे। उन्होंने उनके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और सूचनाके लिये अतिशय कृतज्ञता व्यक्त की। पू.गुरुदेवने पश्चात् यह सन्देश श्रीपोद्दार महाराजको भी दे दिया। उस सन्देशका पालन करते हुए कुंभका प्रथम संक्रान्तिस्नान पू. पोद्दार महाराजके परिवार-सहित हम सभी सत्संगी बन्धुओंने ब्राह्ममुहूर्त्तमें सूर्योदयके पूर्व ही किया था। मैं स्नानके समय पू.गुरुदेवके साथ ही था। मैंने देखा – पू. गुरुदेव स्नानके लिये ज्योंही त्रिवेणीसंगम पहुँचे, उनका समग्र शरीर एक विशेष रोमाञ्चित अवस्थाको प्राप्त हो उठा था। स्वयं मुझे तो वहाँ किसी भी

आकाशचारी सन्तके दर्शन नहीं हुए। पू.गुरुदेवसे पूछनेपर उन्होंने अवश्य अनेक उच्चतम सिद्ध महात्माओंकी उस समय उपस्थितिकी बात बतायी और उनके दर्शन-मिलनकी बात भी कही।

इन्हीं दिनोंकी एक घटना और है। मैं पू. गुरुदेवको उन दिनों प्रति दिवस प्रातः सात बजेसे श्रीमद्भागवत मूलपाठ सुनाया करता था। गोरखपुरमें ही हम लोग पू.गुरुदेव की निवास-कुटीके पास एक बिल्ववृक्षके नीचे बैठा करते थे। मैं सप्ताहक्रमसे पाठ करता था और पू.गुरुदेव सुना करते थे। उन दिनों वर्षाकाल था। मेरे पास वस्त्रोंका अभाव था। अतः स्नानके पश्चात् वस्त्र सुखाकर तब पहनकर आना होता था। इसमें यदा-कदा विलम्ब हो जाया करता था। पू.गुरुदेव अपनी घड़ीसे ठीक सात बजे श्रीमद्भागवतपाठ सुनने बैठ जाया करते। मेरा विलम्ब करके आना उन्हें अप्रिय लगता था , यह मैं समझता था, किन्तु वर्षाके कारण कपड़े नहीं सुखा पानेसे विवश था। एक दिवस ज्योंही मैं पाँच-सात मिनट विलम्बसे आया, पू.गुरुदेव मुझपर बिगड़ गये। वे आज अतिशय ही उग्र थे। उसी उग्रतामें वे कह बैठे –"तुम समझते हो, यहाँ केवल राधाबाबा ही कथा सुनते हैं। तुम्हें पता है, मेरे साथ कौन-कौन महासिद्ध लोग आते हैं और श्रीमद्भागवत सुनते हैं ? वे सभी यथासमय मेरी उपस्थितिके साथ यहाँ आ जाते हैं और उनको प्रतीक्षा कराना मुझे सर्वथा असह्य है। तुम्हें कलसे पाठ सुनाना हो तो ठीक समयपर आ जाया करना अन्यथा कलसे मैं पाठ सुनना स्थगित करता हूँ।"

उनकी डाँट इतनी उग्र और कठोर थी कि मैं अश्रु बहाने लगा था। मैंने उनसे इतना ही कहा था–"बाबा ! एक ही धौत वस्त्र रहता है। इसे धोकर प्रतिदिवस सुखाकर तब पहनना होता है, अतः चेष्टा करते-करते विवशतावश पाँच-सात मिनट विलम्ब हो जाता है। फिर मेरे पास समय देखनेके लिये घड़ी भी नहीं है। वर्षाकी झड़ी सूर्यको अनवरत ढके है, क्या करूँ ?" इस मेरे उत्तरपर उस दिवस उनके दयार्द्र स्वभावसे अचानक ही एक अति विलक्षण सत्य उद्घाटित हो गया था। वे बोल उठे थे – तुझे पता है विगत कल और आज दोनों दिवस सनकादि ऋषि तेरी कथांमें समुपस्थित थे और वे ठीक समयपर आवें और तू विलम्ब करे , क्या यह शोभनीय है ? अब तो मैं पानी-पानी हो गया था। दूसरे दिवससे मैं इस विषयमें इतना जागरूक हो उठा था कि फिर मेरे आनेमें कभी विलम्ब नहीं हुआ।

एक घटनाका उल्लेख और कर देता हूँ। गोरखपुरके निकट ही देवरिया जिलेमें तमकुही नामक एक स्थान है। पहले ब्रिटिश राज्यमें यह एक स्वतंत्र स्टेट थी। इस स्टेटके राजा साहबका इलाज करने एक नामी वैद्यजी बुलाये गये थे। ये वैद्यजी बहुत ही साधन-परायण थे। इन संत-हृदय वैद्यजीकी पारमार्थिक एवं साधनभूमि अच्छी थी और इन्हें दिव्य सन्तोंके दर्शन होते थे। उन दिनों श्रीपोद्दार महाराजका गीतावाटिकामें प्रतिदिवस सत्संग हुआ करता था। तमकुही जानेका रास्ता गोरखपुर होकर ही था। अतः श्रीवैद्यजीके मनमें श्रीपोद्दार महाराजके दर्शन-सत्संग एवं पू. श्रीराधाबाबाके भी दर्शनकी इच्छा बलवती हो उठी थी। श्रीवैद्यजी एक-दो दिवस गीतावाटिकामें सत्संग-लाभ करते रहे। जब वे तमकुही जाने लगे और बिदाई लेने पू.गुरुदेवके पास पहुँचे तो कहने लगे–"बाबा ! यह वाटिका अतिशय पवित्र एवं तीर्थमयी है। यहाँका वातावरण बहुत ही शुद्ध पारमार्थिक है। यहाँ तो उच्चतम नारदादि महर्षियोंका भी आवागमन होता रहता है। मैंने संकोचवश श्रीपोद्दार महाराजसे तो यह बात इसलिये नहीं कही कि उनके मुखपर उनकी प्रशंसा क्या करूँ; किन्तु आपसे विनम्र निवेदन है कि श्रीपोद्दार महाराजका अलौकिक सत्संग प्रातःकाल, जो भी निर्धारित समय हो, ठीक उसी समय प्रारंभ कर देना चाहिये। उनके सत्संगमें अनेक उच्चकोटिके महात्मागण सूक्ष्मशरीरसे सम्मिलित होते हैं। समयावधि निश्चित नहीं होनेसे उन्हें अनेक बार तो अत्यधिक लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, और अनेक बार सत्संगसे वंचित हो जाना होता है। ये सभी साधु अन्तर्जगत्‌में बड़ा ही महत्व रखते हैं, अतः मैंने आपसे विनम्र निवेदन किया है। यह तो सौभाग्य है कि ऐसे साधुओंका यहाँ निरन्तर आवागमन है। मैं ये सब बातें प्रत्यक्षदर्शी होनेके नाते ही आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

पू.गुरुदेवने तबसे यह सदा ध्यान रखा कि श्रीपोद्दार महाराजका सत्संग यथासमय हो।

तीर्थयात्रा-प्रस्थान

(आठवाँ अध्याय)

तीर्थोंकी अनन्त महिमा शास्त्रोंमें वर्णन की गयी है। वे अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही सबका पापनाश करके उन्हें मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं और मोक्षतक दे देते हैं । महाभारत, रामायण आदिके साथ ही प्रायः सभी पुराणोंमें तीर्थोंकी महिमा गायी गयी है । पद्मपुराण और स्कन्दपुराण तो तीर्थमहिमासे परिपूर्ण हैं । तीर्थोंमें किनको कब, कैसे क्या-क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थका कैसे प्रादुर्भाव हुआ – इसका अति सुन्दर ढंगसे विशद वर्णन उनमें किया गया है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराणके संक्षिप्त संस्करण जब गीताप्रेससे निकाले गये उस समय श्रीपोद्दार महाराजको अन्तर्जगत्से तीर्थयात्राकी प्रेरणा हुई थी। कारण स्पष्ट था – भगवान्के स्वरूपका साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी महात्मा स्वयं 'तीर्थरूप' होते हैं । उनके हृदयमें भगवान् सदा प्रकट रहते हैं। इसलिये वे जिस स्थानमें जाते हैं, वही तीर्थ बन जाता है। वे तीर्थोंको अपने निवाससे 'महातीर्थ' बना देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिरने महात्मा श्रीविदुरजीसे यही कहा था –

भवद्विधा भावगवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता।।

(श्रीमद्भा०१ ।१३ ।१० ।।)

भगवती श्रीगंगाजीने भगीरथसे कहा–"तुम मुझे पृथ्वीपर ले जाना चाहते हो ? अच्छा, मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। देखो, मुझमें स्नान करनेवाले लोग तो अपने पापोंको मुझमें बहा देंगे; परन्तु मैं उनके पापोंको कहाँ धोने जाऊँगी ?" इसके प्रत्युत्तरमें भगीरथजीने कहा –

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ।।

(श्रीमद्भा०९ ।९ ।६ ।।)

"इस लोक और परलोककी समस्त भोगवासनाओंका सर्वथा परित्याग किये हुए शान्तचित्त ब्रह्मनिष्ठ साधुजन, जो स्वभावसे ही लोगोंको पवित्र करते

रहते हैं, अपने अंग-संगसे आपके पापोंको हर लेंगे; क्योंकि उनके हृदयमें समस्त पापोंको समूल हर लेनेवाले श्रीहरि नित्य निवास करते हैं ।''

वस्तुतः स्वधर्मपर आरूढ़ आदर्श सिद्ध सन्त-महात्मा जंगम तीर्थ होते हैं।

वैसे पू.पोद्दार महाराजको अन्तर्जगत्की प्रेरणा तो बहुत पहले ही मिल गयी थी किन्तु यह प्रेरणा मूर्त्त तब हुई जब सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका और गीताप्रेसके अन्य ट्रस्टियोंने निश्चय किया कि सन् १९५७ ई०तदनुसार सं. २०१४ वि. में 'कल्याण' पत्रिकाका 'तीर्थाङ्क'के रूपमें विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाय और मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थानोंका सही विवरण जाननेके लिये स्वयं श्रीपोद्दार महाराज एक तीर्थयात्रा-ट्रेन लेकर प्रायः सभी तीर्थोंमें भ्रमण करें। श्रीसेठजी स्वयं भी इसके पूर्व गीताप्रेसकी एक तीर्थयात्रा-ट्रेन लेकर तीर्थोंमें भ्रमण कर चुके थे। इस ट्रेनके कारण 'कल्याण'के ग्राहकोंमें भी आशातीत अभिवृद्धि हुई थी, साथ ही गीताप्रेसकी पुस्तकें भी बहुत संख्यामें विक्रय हुईं थीं।

श्रीपोद्दार महाराजका मन इधर अत्यधिक एकान्तप्रिय हो रहा था, अतः उनकी रुचि सैकडों व्यक्तियोंकी व्यवस्था अपने सिरपर लेकर तीर्थयात्रा करनेकी सर्वथा नहीं थीं। किन्तु श्रीपोद्दार महाराजका प्रारम्भसे ही यह शील रहा कि वे श्रीसेठजीके द्वारा हाँके जानेपर जैसे वे नचाते थे, नाचने लगते थे। पू.पोद्दार महाराजने किसीको अपने निजी पत्रमें लिखा –''मैं तो चाहता था–एकान्त तीर्थसेवन किन्तु बदलेमें मिला यह रजोगुणी मनुष्योंका मेला। मैं तीर्थयात्राट्रेनमें जबरदस्ती ले जाया जारहा हूँ। मैंने निश्चय कर लिया कि भगवान्की यही इच्छा है, इसीसे जानेको तैयार हो गया हूँ। ''

परोक्ष स्तरपर वास्तविकता यही थी कि अन्तर्जगत्ने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये श्रीसेठजी जयदयालजीके हृदयमें यह भाव जाग्रत् कर दिया कि वे श्रीपोद्दार महाराजको भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंमें जानेका आग्रह करें, क्योंकि उनके समाग्रहके बिना श्रीपोद्दार महाराज उद्यत होने संभव ही नहीं थे।

१९ जनवरी सन् १९५६को श्रीपोद्दार महाराज गोरखपुरसे काशी पहुँचे। काशीसे ही इस यात्राका शुभारम्भ होना था। वस्तुतः यात्राका प्रारम्भ पूर्वाभिमुखी होना चाहिये था किन्तु अचानक ही उड़ीसामें दंगे हो जानेके कारण यह तय

हुआ कि यात्रा पहले चित्रकूट, प्रयागकी तरफ उत्तरी भारतका भ्रमण करले और तब आगे अग्रसर हों। कार्यक्रमको बदलनेके लिये पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराजको लगभग एक सप्ताह काशीमें ही रहना पड़ा।

पू.गुरुदेव द्वारा काशीका महिमा-वर्णन

ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें काशी संसारकी सर्वाधिक प्राचीन नगरी है। काशीके बारह नाम प्रसिद्ध हैं। काशी, वाराणसी, अविमुक्त, आनन्दकानन, महा श्मशान, रुद्रावास, काशिका, तपःस्थली, मुक्तिभूमि और श्रीशिवपुरी।

जो पृथ्वीपर होनेपर भी पृथ्वीसे संबद्ध नहीं है, साधारण पृथ्वी नहीं— तीन लोकसे न्यारी है, जो अधःस्थित मृत्युलोकमें स्थित होनेपर भी स्वर्गादि लोकोंसे भी अधिक उच्चतर है, जो जागतिक सीमाओंमें परिच्छिन्न होते हुए भी मोक्षदायिनी —सबके बन्धन काटने वाली है, ऐसी भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशी है।

काशी त्रिलोकीका सार है। पापाचारी —दुराचारी यहाँ पापमुक्त होकर देववत् प्रकाशित हो उठते हैं। यह भगवान्के त्रिशूलके ऊपर बसी नगरी है। प्रलयमें भी इसका नाश नहीं होता। यहाँ देहत्यागके समय भगवान् मरणोत्सुक प्राणीको तारकमंत्र सुनाते हैं और उससे उसे तत्क्षण ही तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके सम्मुख निजका ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित हो जाता है। 'काशी' नामका अर्थ है—जहाँ ब्रह्म मूर्त्त हो। **काश्यां हि मरणान्मुक्तिः**—काशीमें कैसा भी प्राणी मरे, वह मुक्त हो जाता है।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो काशी—विश्वनाथपर अत्यधिक आस्था रखते थे, अतः तीर्थयात्राके उद्देश्यसे काशीमें प्रवेश करते ही पू. गुरुदेवने निर्णय किया कि एक नाव लेकर काशीके सभी घाटोंके दर्शन किये जावें । उन्होंने अपने साथ गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी एवं श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीको लिया। अन्य लोग भी जिनमें श्री शिवनाथजी दुबे, श्रीरामनिवासजी ढंढारिया, श्री बजरंगलालजी बजाज, श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक आदि प्रमुख थे, उनके साथ

थे। लेखक भी इस यात्रामें पू.गुरुदेवके साथ था। पू. गुरुदेव गोप्रेक्षतीर्थ स्थित गायघाटपर बनी डालमियाकोठीमें श्रीपोद्दार महाराजके साथ ठहरे थे। नावसे यहींसे यात्रा प्रारंभ हुई। घाटपर स्थित हनुमानजीके मन्दिरके पास नावपर हम सभी आरूढ़ हुए।

जैसे ही हम लोग नावपर बैठे पू. गुरुदेव श्रीयाज्ञिकजीको संबोधित कर कह उठे– "याज्ञिकजी ! उन्मुक्त गगनमें उड़ते हुए राजहंसको देखकर पकड़ लेनेकी, पकड़कर अपने उद्यानके सरोवरमें अथवा सुन्दर-से पिञ्जरमें रुद्ध रखनेकी लालसा कितने ही सुजनोंकी हो सकती है, परन्तु उसे पकड़ लेनेकी सामर्थ्य सबमें नहीं होती, नहीं हो सकती। भगवान् शंकर जैसी अनन्त वैराग्यके आकाशपथमें उड़ती हुई महाविभूतिको अपनेमें आकृष्टकर धारण करनेकी शक्ति इस काशी नगरीमें ही है। इस काशीनगरीने अपने अप्रतिम पावित्र्यका जाल फेंककर इस श्मशानप्रिय औढरदानी शिव-मरालको अपनी स्थायी निधि बना लिया है। कैसी विलक्षण कृपालु भूमि है यह ! यह पञ्चभूतोंकी रचना सर्वथा नहीं है। यह प्राकृत प्रतीत होती हुई भी अप्राकृत, विशुद्ध सत्वमय है।"

"कहते हैं – श्रीयोगत्रयानन्दजी नामक एक सिद्ध पुरुष पहले भगवान्के सगुण साकार स्वरूपको नहीं मानते थे। वे नैयायिक थे और महर्षि गौतमने स्वयं प्रकट होकर उन्हें काशीमें न्यायवार्तिक पढाया था। ये बादमें श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीके शिष्य होगये थे। जब श्रीगोस्वामीजीके अनवरत समझानेपर भी इन्होंने भगवान्के सगुण साकार शिवस्वरूपको नहीं माना और काशीमें 'भगवान् प्रत्येक मरणासन्न प्राणीको भगवन्नाम तारकमंत्र सुनाते हैं'– इन शास्त्रवचनोंको कपोलकल्पित किंवदन्ती ही माना, तो श्रीगोस्वामीजीने उन्हें एक दिवस काशीके राजघाटपर जाकर एक गटरके मुखपर लगे लोहेके ढक्कनको उठानेको कहा। श्रीयोगत्रयानन्दजीने ज्योंही ऐसा किया उन्हें एक विलक्षण दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। वे चकित हो उठे। उन्होंने देखा कि गटरमें एक सद्यजात शिशु पड़ा है। गन्दे जलमें गिरकर श्वास घुटनेसे उसकी मृत्यु आसन्न है। वह ऊर्ध्वश्वास ले रहा है। टूटते श्वासोंके मध्य प्रत्येक हिचकीमें उसे भगवान् शंकर गोदमें ग्रहण किये उसके दाहिने कानमें अपना मुख सटाकर तारक रामनाममंत्र सुना रहे हैं। श्रीयोगत्रयानन्दजी यह दृश्य देखकर

एक बार तो अभिभूत हो उठे, किन्तु पुनः अविश्वासने उनके मनपर अपना अधिकार कर लिया। उन्होंने सोचा – संभव है, मुझपर किसी सिद्धिका प्रयोग किया गया हो, अतः उन्होंने अपने हाथ-पैर धोकर सर्वथा जागरूक होकर पुनः उस गटरमें झाँका, पुनः उन्हें वही दृश्य प्रत्यक्ष हुआ। अब तो वे पूर्ण विश्वस्त हो, अपने गुरुजीके पास पहुँचे और उन्होंने भविष्यमें सगुण साकार भगवान् शिवकी भक्तिमें ही अपनेको पूर्णतया तल्लीन कर दिया।''

''याज्ञिकजी ! जैसे नवजलधर विचार नहीं करता उच्च-नीच, मलिन-पवित्रका, सर्वत्र समानभावसे बरसकर वह ग्रीष्मका ताप शमित कर देता है, वैसे ही यह काशी नगरी कहाँ देखती है उज्ज्वल-तमोमय भावोंकी ओर; समान रीतिसे बरस रही है इसकी करुणामृतकी धारा सबपर। यह काशीनगरी बड़े-बड़े पाण्डित्याभिमानी धर्मधुरन्धरोंको भी वही गति देती है जो गति यह अपनी सँकरी गलियोंमें विचरण करते विष्ठाभोजी ग्राम्यसूकरको देती है।''

पू.गुरुदेव अपनी स्लेटपट्टीपर काशी-महिमापर धाराप्रवाह लिखते जा रहे थे और गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी उसे पढकर सुना रहे थे।

''जैसे नवजलधरमें सर्वत्र सदैव विद्युत्का निवास है, उसी प्रकार इस काशीके भी कण-कण, अणु-अणुमें भगवान् शंकर ओतप्रोत हैं। काशीधाम और भगवान् शंकर परस्पर एक-दूसरेमें सदैव अपृथक्, पूर्णतया ओतप्रोत हैं। काशीका एक-एक धूलिकण भी पूर्ण परात्पर भगवान् शंकर है।''

''काशी महाश्मशान है। महाश्मशान सबकी अवश्यंभावी गति है। पापी-से -पापी भी मृत्युके समय श्मशानकी शरण तो पाता ही है। बालघातिनी पूतना, महानिर्दय अघासुर, रावण, कुम्भकर्ण, कंस, जरासंध – सभीकी श्मशानमें तो समान गति ही हुई है। काशी सबको समान आश्रय एवं मुक्ति-गति देनेमें समर्थ होनेसे ही महाश्मशान है। यह सबको अनवरत मुक्तिदान करती है किन्तु स्वयं त्रिगुणात्मक प्रपञ्च में स्थित रहती है , अतः इसे अविमुक्त संज्ञा दी गयी है।''

''काशी विलक्षण कृपामयी है। कहते हैं – पहले काशी भगवान् माधवकी पुरी थी। एक बार भगवान् शंकरने किसी बातपर कुपित होकर अपने त्रिशूलसे ब्रह्माजीका मस्तक काट दिया था। ब्रह्महत्याके फलस्वरूप वह मुण्ड

उनके करतलसे संलग्न हो गया। भगवान् शंकर अनवरत द्वादश वर्षोंतक बदरीनारायण, कुरुक्षेत्र, ब्रह्महृद आदि तीर्थोंमें घूमते रहे, किन्तु न तो वे ब्रह्महत्यारूप पापसे मुक्त हुए एवं न ही ब्रह्महत्याके प्रतीकरूपमें उनके हाथसे संलग्न वह मुण्ड ही उनके करतलसे पृथक् हुआ। अन्तमें ज्योंही वे काशीकी परिधिमें प्रविष्ट हुए ब्रह्महत्याने उनका पीछा छोड़ दिया और यहाँ स्नान करते ही कर-संलग्न कपाल भी पृथक् हो गया। जहाँ वह कपाल पृथक् हुआ वही कपालमोचनतीर्थ कहलाया। भगवान् शंकर काशीकी इस करुणावर्षिणी कृपाशक्तिको देखकर इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने अपने श्वसुरालय हिमालयमें रहना त्यागकर काशीमें ही नित्य निवास स्वीकार कर लिया। भगवान् माधवसे उन्होंने अपने आवासके लिये यह नगरी माँग ली। भगवान्ने द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें से विश्वनाथात्मक ज्योतिर्लिंगके रूपमें अपनेको काशीमें ही प्रतिष्ठित किया है। भगवान् शिव अनन्त हैं किन्तु काशीकी गली-गलीमें, गृह-गृहमें इनके इतने मन्दिर हैं कि इनकी नामावली दे पाना ही असंभव है।''

''याज्ञिकजी ! काशीकी महिमा उद्घोष करती है कि भक्ति सभीके लिये नितान्त आवश्यक है । भक्तिके अभावमें न अभ्युदय संभव है, न ही अपवर्गकी सिद्धि। क्योंकि सब प्रकारके कल्याणका उदय, विस्तार, इस भक्तिरूप मूल स्रोतसे ही होता है; यद्यपि काशी उन भ्रान्त लोगोंको भी सदासे आश्रय देती आयी है, जो भक्तिका आश्रय गहण करना तो दूर, उसकी अत्यन्त अवहेलना करते हैं। ऐसे असंख्य लोगोंको काशीने अपना आश्रय दिया है जो मात्र ज्ञानकी संथा लेकर आत्मबोधके लिये सतत प्रयत्नशील रहे है। सर्वमंगलनिकेतन भगवान् आशुतोषकी भक्ति उन्हें सहज ही ज्ञानकी प्राप्ति करा देती, इसके अवान्तर फलरूपमें ही उन्हें स्वतः आत्मबोध हो जाता, परन्तु उन्होंने इस ओर ताका तक नहीं है। ज्ञानलाभके लिये इन असंख्य लोगोंने अथक श्रम किया है, किन्तु सच्ची बात यही है कि इतना श्रम करनेपर भी परिणाममें हाथ उनके लगा है, ज्ञानाभिमान एवं विद्याभिमान ही। सच्चे ज्ञानकी आलोकमाला उनके मानसतलको, उनकी बुद्धिको उद्भासित नहीं कर सकी है। उन्हें तो परिणाममें हाथ लगा है – केवल क्लेश-ही-क्लेश, साधनश्रम मात्र; इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। उन्हें इस ज्ञानाभिमानके फलस्वरूप साधनजन्य यत्किंचित् सिद्धियाँ भी नहीं मिलीं। मिलें कैसे ? समस्त सिद्धियोंके मूल तो भगवान् आशुतोषके

श्रीचरणोंकी अर्चना है; उनके सम्बन्धसे शून्य तो कोई भी साधन —किसी भी शुभ फलका सृजन कर जो नहीं सकते।"

"याज्ञिकजी ! जैसे थोथी भूसीके ढेरका कूटनेपर अन्नकणोंकी उपलब्धि नहीं होती, निरर्थक श्रम मात्र ही होता है, इसी प्रकार श्रेयकी निर्झरिणी भगवान् आशुतोषकी भक्तिकी जो अवहेलना कर देते हैं, वे शुष्क ज्ञानलाभके लिये भले ही कुछ भी कर लें; उनके लिये अवश्यम्भावी परिणाम मात्र क्लेश ही होता है।"

"याज्ञिकजी ! इस काशीका असंख्य योगीगण भी आश्रय ले चुके हैं, योगके साधनोंकी चरमोत्कर्ष दशामें वे अवस्थित भी हो चुके, किन्तु उन्हें अपने सच्चे लक्षकी प्राप्ति तो दूर, उसकी झाँकी भी नहीं हुई। हाँ ! वे अपनी योगसिद्धियोंका चमत्कार जगत्में जादूगरोंकी तरह प्रदर्शित अवश्य ही कर गये हैं। और तब वे लौटे भक्तिकी ओर । भक्तिमार्ग – राजमार्गका अवलम्बन जैसे ही उन्होंने किया, उनकी सब चेष्टाएँ समर्पित होने लगीं भगवान् आशुतोषको। उनके इन्द्रियोंका समस्त व्यापार होने लगा भगवान् औढरदानीके उद्देश्यसे ही। इस कर्म-समर्पणने शीघ्र ही समग्र मनका मैल धो दिया। फिर तो भक्तिका उन्मेष हुआ ही और स्वरूपज्ञान होनेमें विलम्ब ही क्या था, वह तो स्वतः ही हो गया। इस प्रकार इन योगियोंने अतिशय सुगमतासे परमपदकी प्राप्ति कर ली। भगवान्‌की भक्तिका आश्रय कर लेनेपर कोई भी व्यक्ति अभीष्ट सिद्धिसे च्युत हो जाय, यह तो संभव ही नहीं।"

मैं देख रहा था – पू.गुरुदेवकी दशा ही उपदेश देते-देते कुछ विलक्षण हो रही है। उनके नेत्र-प्राण-मन भगवान् आशुतोषके चिदानन्द श्रीविग्रहकी अनन्त अपरिसीम पारावारविहीन महिमामें डूबने-उतराने लगे हैं। हम लोग जिस गंगाघाटके समीप पहुँच रहे थे, उसके पास ही थोड़ी ही दूरपर भगवान् विश्वनाथका मन्दिर अवस्थित था। अतः सबका यही मत हुआ कि यहाँ नावसे उतरकर एक बार काशी विश्वनाथ एवं माता जगदम्बाके दर्शन किये जावें। सभी लोगोंने नावको किनारे छोड़ दी और घाटसे छोटी सीढ़ियाँ चढ़कर एक गलीसे विश्वनाथ मन्दिरकी ओर चलने लगे। काशीकी गलियाँ इतनी छोटी-छोटी हैं कि अतिशय कठिनाईसे दो-तीन व्यक्ति साथ चल सकते हैं। पू.गुरुदेवके पार्श्वमें श्रीशिवनाथजी दुबे थे, वे काशीकी गलियोंसे परिचित थे। वे पू.

गुरुदेवका हाथ पकड़े आगे-आगे चल रहे थे, हम सभी लोग पू.गुरुदेवके पीछे थे। हमने देखा सामने गलीके किनारे बंगाली गृहस्थके मकानके आगे बनी चौकीपर एक सात-आठ वर्षकी कन्या सर्वथा नग्न खड़ी है। मुझे डर लगा कि पू.गुरुदेवकी कहीं इस नग्न कन्यापर दृष्टि पड़ी तो वे पाँच-सात दिवसके अनवरत उपवासकी घोषणा नहीं कर बैठें। मैं कुछ आगे बढ़कर पू.गुरुदेवकी दृष्टि मेरी अपनी ओर केन्द्रितकर उस दृश्यसे उन्हें निवारित करना चाहता था कि मैंने देखा पू.गुरुदेवके ठीक आगे एक मछुआरिन अपनी टोकरीमें मृत मछलियाँ लिये चल रही है। गली इतनी सँकरी थी कि पू.गुरुदेवको न तो मैं शीघ्र गति दिलाकर उस मछुआरिनसे आगे निकल जानेको कह सकता था, न ही उसकी विशाल टोकरीमें भरे मृत मत्स्योंकी वीभत्स दुर्गन्धसे पू.गुरुदेवकी रक्षाका कोई उपाय ही अन्वेषण कर पा रहा था। अचानक मैंने देखा वह नग्न लड़की उस मछुआरिनको पुकार रही है। उसकी पुकार इतनी तीव्र थी कि निश्चय ही पू.गुरुदेवकी दृष्टि उस ओर उठ ही गयी थी। मेरा अनुमान था पू. गुरुदेव उस पूर्ण नग्न बालिकाको देखते ही नेत्र नीचे कर लेंगे और तब उनके पाँच-सात दिवसके भिक्षात्यागकी उद्घोषणा हो जायगी। परन्तु हुआ कुछ दूसरा ही। पू.गुरुदेवकी दृष्टि ज्यों ही उस बालिकापर पड़ी, वे श्रद्धावनत होकर वहीं बैठकर उस बालाको प्रणाम करने लगे। मैंने देखा उस बालिकाके अमृतस्यन्दी अधरोंपर एक उन्मुक्त स्मित नाच उठा है। उस बालिकाके अरुण अधरोंपर आयी मुसकान वस्तुतः शिशु-स्वभावसुलभ हँसी नहीं थी। वह तो अघटनघटनापटीयसी योगमाया-शक्तिकी मुसकान थी। अनन्त ऐश्वर्यमयी भगवती अपना किंचित् करुणावैभव पू.गुरुदेवको प्रत्यक्ष करानेके उद्देश्यसे उस बालिकाके रूपमें मुसका रही थीं। उस मुसकानको देखते ही पू.गुरुदेवमें तो मानका सर्वथा अभाव होकर सच्चे दैन्यका संचार हो उठा था। हम सभीने देखा पू. गुरुदेव अति अस्फुट स्वरमें बहुत ही मन्द शब्दावली उच्चारण कर रहे हैं और अनवरत उस सर्वथा निर्वस्त्र कन्याको सिर धरापर पटक-पटककर प्रणाम कर रहे हैं।

"हे महामाये ! अपरिच्छिन्नैश्वर्यमयी माँ !! तुम्हारे ऐश्वर्यस्वरूप एवं महिमाका कहाँ आदि एवं अन्त है ! सब कुछ अपरिसीम ! हे सर्वनियामिके ! सर्वत्र सबके बाहर-भीतर अवस्थित ! सबके आत्माओंकी आत्मा ! शेष, शंकर,

ब्रह्मादि भी तुम्हारी मायासे सदैव विमोहित रहते हैं। ऐसी महामहिम, सर्वकारणकारण, सवर्नियंत्री, सर्वमायाधीश्वरी, तुम्हारे सम्मुख मुझ दीन-हीनका अस्तित्व ही क्या है ? प्रज्ज्वलित अनन्तकोटि सूर्य जिसके तेजके सम्मुख मात्र एक खद्योतके समान भी नहीं प्रतीत होते, मेरी तुलना तो वहाँ भला क्या कह कर की जा सकती है, इतनी महान् तुम और इतना तुच्छातितुच्छ मैं ! फिर भी कृपामयी माँ ! तुम अपनी अमोघ कृपावर्षा करती मेरे सम्मुख व्यक्त हो। अपने अनन्त कृपामय स्वरूपसे तुम कदापि स्खलित नहीं हो सकती, इस शाश्वत सत्यकी आशासे मैं अंजलि बाँधे तेरे श्रीचरणोंकी शरणमें हूँ।''

''हे माते ! रजोगुणी मति है मेरी ! प्राकृत रजमें तमका अंश न रहे, यह संभव नहीं, इसलिये तमकी छाया तो मेरी बुद्धिमें है ही। तमोगुणजन्य अज्ञता भी तो मेरी चिर संगिनी बनी रहेगी ही। माँ ! कहाँ तुम विशुद्ध सत्वमयी, मेरे -जैसे नगण्यतमपर, तुझ सुमहत्तमकी कृपादृष्टि पड़े, यह संभावना भी है या नहीं, यह भी कौन बताये ? माँ ! तेरी अयाचित अनुकम्पाराशिकी बलिहारी है !''

पू.गुरुदेव अस्फुट भाषामें स्तुति करते जा रहे थे। सभीने किसी प्रकार प्रयत्न करके पू.गुरुदेवको उस विनयावेगसे उत्थित किया। इसके पश्चात् तो पू.गुरुदेवका एक हाथ दुबेजी थामे रहे, और दूसरा हाथ श्रीरामनिवासजी ढ़ंढारिया। किसी प्रकार भावाविष्ट दशामें ही उन्हें विश्वनाथ मन्दिर लाया गया।

विश्वनाथ मन्दिरमें पू.गुरुदेव अर्धबाह्यावेशमें ही दर्शन करते रहे। दर्शन एवं पूजनके पश्चात् ज्योंही गुरुदेव अन्नपूर्णा मन्दिरकी ओर जानेको उद्यत हुए एक पण्डा दौड़ा हुआ आया और उसने मन्दिरके प्रांगणके एक ओर सौभाग्यगौरी और गणेशजीके दर्शनोंका आग्रह किया। प्रत्येक मन्दिरके प्रांगणमें जैसे ही पू.गुरुदेव खड़े होते थे, ऐसा प्रतीत होता था, मानो मूर्त्ति चिन्मय जाग्रत् होकर मुसका उठती थी। मैंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी को यह चमत्कार संकेत करके बताया। मैंने उनसे जिज्ञासा भी की कि यह मेरी मात्र मानसिक कल्पना ही है, अथवा उन्हें भी ऐसा ही अनुभव हो रहा है। उन्होंने यही बात श्रीयाज्ञिकजीको निवेदन की। मेरी बातसे दोनों ही सहमत थे। पंडाके द्वारा प्रेरित किये जानेपर पू.गुरुदेवने श्रृंगारगौरी, अविमुक्तेश्वर महादेव

तथा श्रीसत्यनारायण भगवान्के भी दर्शन किये। इस दिन पू.गुरुदेवकी दशा कुछ इतनी भावाभिभूत रही कि उन्हें आगे किसी मन्दिरकी ओर नहीं ले जाकर सीधे उनके निवास ही पहुँचा दिया गया। उस दिवस अधिकांश काल मैंने देखा पू.गुरुदेव होशमें नहीं रहे थे। उनके नेत्र बरसते रहे।

बहुत दिनों पश्चात् पू.गुरुदेवने मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी, गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको उस दिवसकी अनुभूति सुनायी थी। वे कह रहे थे कि जैसे ही उनकी दृष्टि उस मुसकाती बालिकापर पड़ी, तत्क्षण ही आदिशक्ति महामाया उनके सम्मुख व्यक्त हो उठीं। वे किसी प्रकार उनकी वन्दना कर पाये, किन्तु उनकी स्थिति ऐसी हो गयी कि उन्हें सर्वत्र शिवाशिव ही परस्पर समालिंगित, विराजित दिखने लगे। यह दर्शन उन्हें अनवरत २० घण्टेतक होता रहा। तब जाकर वे प्रकृतिस्थ हो पाये।

बिन्दुमाधवतीर्थके पुजारीको उपदेश

दूसरे दिवस पुनः प्रभात-ही-प्रभात पू.**गुरुदेवकी** नावयात्रा प्रारंभ हुई। गौघाटसे चलते हुए पञ्चगंगाघाटतक हम लोग नावसे चले। कहा जाता है कि यमुना, सरस्वती, किरणा एवं द्यूतपापा नदियोंका गंगाजीसे यहाँ संगम हुआ है। इससे ही इस घाटका नाम पंचगंगाघाट पड़ा है। वर्त्तमानमें तो इस प्रकारका संगम दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु गुप्तरूपसे इन नदियोंका यहाँ समावेश होता है, ऐसी किंवदन्ती है। इस घाटमें विष्णुकाञ्चीतीर्थ एवं बिन्दुतीर्थ भी हैं।

अग्निबिन्दु नामक ब्राह्मणको यहाँ भगवान् नारायणका साक्षात्कार हुआ था, और उन्होंने ब्राह्मणसे कहा था कि मैं यहाँ शाश्वत निवास करूँगा। पुरातन कालमें यहाँ भगवान् बिन्दुमाधवका बहुत ही विशाल मन्दिर था, जिसे औरंगजेबने तुड़वाकर मस्जिदका निर्माण करवा दिया था।

हम लोग बिन्दुमाधव मन्दिरमें दर्शनार्थ ज्योंही पहुँचे, पू.गुरुदेवका चित्त किसी अलौकिक जगत्को संस्पर्श करने लगा था। नारायण भगवान्की मूर्त्तिको उस समय पुजारी स्नानार्चन करवा रहा था।

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ।।
ॐ नारायणाय नमः। स्नानीयं जलं समर्पयामि ।।

ब्राह्मणद्वारा मंत्र बोले जा रहे थे। एक तपोनिष्ठ संन्यासीको देखकर वह वृद्ध ब्राह्मण श्रद्धाभिभूत अपना पूजार्चन अपने पुत्रको सम्हला मन्दिरप्रांगणमें स्वागतार्थ आ गया था।

उसने पू.गुरुदेवको साष्टांग प्रणाम किया। वृद्ध ब्राह्मण वस्तुतः सच्चा नारायण-भक्त था। मन्दिरके पीछे ही उसका निवास था। सघन वृक्षावली उस निवासको घेरे थी। पचास वर्षोंसे ब्राह्मणकी नारायण-अर्चना निर्बाध चल रही थी। ब्राह्मण जब शिशु था, उस समय उसकी शैशव-क्रीड़ामें भी नारायण सने थे। जब ब्राह्मणने गृहस्थ-भार सँभाला, तब भी अपने सर्व-कर्म वह नारायणाधीन रहकर ही करता रहा। और अब तो उसकी अवस्था ढल-सी गयी थी। मन्दिरका पूजन-अर्चन अपने नवयुवक बालकके कन्धोंपर डाल, वह ब्राह्मण एकान्तसेवी होकर नारायणमें ही लीन-सा हो रहा था। विगत रात्रि उसे स्वप्न हुआ था। स्वप्नमें उसे भगवान् नारायणने ही आदेश दिया था कि मन्दिरमें दूसरे दिवस वे स्वयं ही एक सुतपस्वी संन्यासीके वेषमें दर्शनार्थ आवेंगे। अतः वह निरे प्रभातसे ही पू.गुरुदेवकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बहुत ही श्रद्धापूर्वक पू.गुरुदेवका चरण-पूजन किया और उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित माला पहनायी। उसने बहुत-से फल भी पू.गुरुदेवको भेंट किये। हम सभी लोग उस ब्राह्मणकी निर्मल भक्तिसे अभिभूत हो उठे। वह हम सभीके सम्मुख मन्दिरकी पुरातन महिमाका उल्लेख कर रहा था। मन्दिरमें आये अयाचित दान द्वारा ही वह ब्राह्मण अपना जीवननिर्वाह करता था। उस सच्चे ब्राह्मणसे मिलकर पू.गुरुदेवके आनन्दकी सीमा नहीं रही। हम लोगोंको मन्दिरसे विदा करते समय वह वृद्ध ब्राह्मण बहुत ही भावुक हो उठा था। उसने पू.गुरुदेवसे दो शब्द उपदेशके प्रदान करनेका बहुत ही आग्रह किया। पू.गुरुदेवने अपनी स्लेटपट्टीपर लिखकर उसे निम्न संदेश दिया – "

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ-भासारुणायततनु-द्विजकुन्दपंक्ति।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमना न पृथक् विवृक्षेत्।।

श्रीमद्भा०३।२८।३३।।

"ब्राह्मणदेव ! अहो ! देखो ! प्रत्यक्ष देखो !! आपकी इष्टमूर्त्ति श्रीहरिके अधरोंपर नित्य सुविराजित इस चिन्मयी मुसकानको प्रत्यक्ष देखते रहो; इसमें बस, लीन हो जाओ। ध्यान करते-करते अपनेको विलीन कर देनेका सर्वोत्तम

स्थल यही तो है। ओह ! इन अरुण अधरोष्ठकी अरुणिम कान्तिसे कुन्दपंक्ति-सदृश दन्तावलिपर भी कैसी लालिमा-सी छायी हुई है। बाहर मूर्त्तिमें मुसकाते श्रीहरिको देख रहे हो तो ! वे ही आपके अन्तर्हृदयमें भी सुविराजित हैं। और यदि यह सत्य आपको प्रत्यक्षगोचर हो जाय तब तो कहना ही क्या कि वे ही आपका पुत्र, परिवार, गृह-परिजन और सम्पूर्ण दृश्य मात्र हैं। इन श्रीहरिको सर्वत्र देखते हुए इन्हींमें तन्मय हो जाओ। सुनो ! मनको प्रेमरसमें डुबा दो, डुबा-डुबाकर पूर्णतया मसृण कर लो; फिर इस तुम्हारे मसृण मनको प्रभुकी हास्यकिरणोंके सम्मुख कर दो। बस, अब इन हास्य किरणोंको आपके मनको आत्मसात् करनेमें किंचित् भी विलम्ब नहीं होगा। परन्तु यह सब तभी होगा, जब श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कुछ भी देखनेकी आपकी वासना रहेगी ही नहीं।''

पू.गुरुदेवका उपदेश श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीने पढ़कर ब्राह्मणदेवताको सुनाया। उस वृद्ध ब्राह्मणका तो रोम-रोम पू.गुरुदेवका आदेश सुनकर कृतकृत्य हो उठा। वह ब्राह्मण पू.गुरुदेवको अपने गृहमें भगवान् नारायणका प्रसाद ग्रहण करनेका बहुत ही आग्रह करने लगा। पू.गुरुदेवने उसके द्वारा दिया एक फल भिक्षारूपमें ग्रहण करनेका आश्वासन देकर उस मन्दिरप्रांगणसे प्रस्थान किया।

गोपालमन्दिरमें बालगोपालके दर्शन

यहाँसे हम लोग चौखम्भा मुहल्ला होते हुए गोपालमन्दिर पहुँचे। इस मन्दिरमें श्रीमद्वल्लभाचार्य–सुपूजित श्रीगोपालजी एवं श्रीमुकुन्दरायजीके विग्रह हैं।

गोपालमन्दिरमें मंगला आरतीके दर्शन खुलने वाले थे। मन्दिरके बाहर एक ब्रजवासी कीर्त्तनियाजी पद गारहे थे।

कजरीकौ पय पियहु लाल (मेरे) जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसे देखि और ब्रजबालक त्यौं बल-बैस चढ़ै।।
पुनि पीवत हीं कच टकटोरत, झूठहि जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै ।।

पू.गुरुदेव स्लेटपट्टीपर लिख-लिखकर सभीको इस पदका भाव समझाने

लगते हैं – "ओह ! जिनसे इस जगत्का सृजन, संस्थान एवं संहार है, जिनकी सत्तापर ही सम्पूर्ण जगत्की सत्ता अवलम्बित है, जगत्का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हैं, जो सर्वत्र हैं, अखण्ड, अबाध ज्ञानसम्पन्न हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जो अपने संकल्पमात्रसे पद्मयोनिमें वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमें योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हो जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उन सर्वैश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्रका कजरीके दुग्धपानसे उनकी वेणी लम्बी हो जायगी, इस उल्लासमें भरकर दूध पीने लग जाना, साथ-ही-साथ अपने घनकृष्ण केशोंपर हाथ रखकर देखते भी जाना कि वेणी वास्तवमें बढी या नहीं, अहा ! कितना विमोहक है। ओह! जब वेणी उन्हें बढती नहीं दीखती,तब उन्हें अपनी जननीकी वञ्चनाका भान होता है। उस समय उनके मुखारविन्दपर नाचती हुई विविध भावलहरियोंकी शोभा कैसी विलक्षण होती है, इसे तो कोई सूरदासजीके समान देखनेवाला ही अनुभव कर सकता है। पराजयका रोष, अब भविष्यमें दुग्धपानसे विरत होनेकी भावना, जननीके प्रति अविश्वास, क्षुधाकी निवृत्ति, दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति –ये सब भाव एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो उठते हैं। यशोदारानी इन्हें देख-देखकर अपनी हँसी संवरण नहीं कर पा रही हैं। "

पू.गुरुदेवकी वर्त्तिका स्लेटपट्टीपर लिखती जा रही थी। मन्दिरमें नवागन्तुक अन्य वैष्णव भी पू.गुरुदेवको घेरकर खड़े हो गये थे। अनेक वैष्णव श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीसे पू.गुरुदेवका परिचय पूछ रहे थे। कीर्त्तनियाजीने उस पदगायनकी समाप्तिपर दूसरा पदगायन प्रारंभ कर दिया था।

मुखपर चन्द डारौं वारि ।
कुटिल कचपर भौंर वारौं, भौंहपर धनु वारि।
भाल केसर तिलक छबिपर मदन सत-सत वारि ।।
नयन खंजन मीन वारौं, कमलके कुल वारि।
झलक ललित कपोल छवि पर मुकुर सत-सत वारि ।
नासिका पर कीर वारौं, अधर विद्रुम वारि ।
दसनपर कन वज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि ।।
चिबुकपर चित वित्त वारौं प्रान डारौं वारि ।
सूर प्रभुकी निरखि शोभा को सकै निरुवारि ।।

कीर्त्तनियाजीके कीर्तनोंके मध्य ही दर्शन खुल गये थे। पू.गुरुदेवके सम्मुख गोपालजीकी बालमूर्त्ति प्रत्यक्ष थी।

यह क्या ! पू.गुरुदेवको आनन्दातिरेकवश आत्मविस्मृति हो रही है। उनके रोम-रोमसे दर्शनजन्य आनन्दका मानो प्रस्फोट हो रहा था। पू.गुरुदेवके सम्मुख मन्दिर-स्थित लड्डूगोपालकी मूर्त्ति थी ही नहीं। वे तो देख रहे थे – यशोदारानीने विधिवत् उबटन-स्नान आदि कराके अपने कन्हैयाको सजाया-बैठाया है । तत्क्षण ही पू.गुरुदेवके हृदयमें ऐसा भावोद्दीपन हुआ कि उन्हें कार्य-कारण, भाव-अभाव – सभी वस्तुओंमें उनके आराध्य श्रीकृष्ण ही भरे दृष्टिगोचर होने लगे। उनके सामने तो वात्सल्यरसवितरण की प्रकृष्ट प्रक्रिया, वात्सल्य-रसास्वादनकी एक पवित्रतम प्रणाली , भक्तमनोरथपूर्त्तिकी एक मधुर मनोहर झाँकी प्रस्तुत कर रहे थे, उनके आराध्य बाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्ण-चन्द्र ! इस झाँकीकी जय हो ! जय हो !!

परस्पर जुड़े हुए तारोंमें किसी एक पर स्वरलहरी उदय होते ही अन्य तार भी झंकृत हो ही उठते हैं। इसी नियमसे पू.गुरुदेवके हृदय-तन्तुपर उदय हुई लीलोन्मेषकी सुधा-धारासे सारा वातावरण ही रसमय हो उठा था।

पू.गुरुदेव देख रहे थे – सर्वान्तर्यामी, सर्वनियामक, उनके आराध्य वात्सल्यरस-सुधापानकी उत्कट अभिलाषावश अपने बाल्यावेशके अन्तरालमें अपना सर्वैश्वर्य, अपनी अशेष नियामकता छुपाये ब्रजरानी यशोदाके सामने बालक्रीड़ा कर रहे हैं । पू.गुरुदेव सर्वथा ही विस्मृत कर गये कि वे काशीमें गोपालमन्दिरमें दर्शनार्थ आये हैं । उन्हें तो बस यही अनुभव हो रहा है कि ब्रजपुरके जल,अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आदित्य, चन्द्र, तारिकायें, आकाश, तम, तेज – इन सबके अधिष्ठाता देवता, उनके आराध्य श्रीकृष्णको अपने-अपने नेत्रोंसे निहार-निहारकर कृतकृत्य हो रहे हैं । कैसी विलक्षण झाँकी है !

पू.गुरुदेवके सम्मुख आज श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रियोंके नियामक नहीं हैं, अपितु सभी इन्द्रियाँ उनका नियमन कर रही हैं । अपनी हथेलीपर रक्खे जननी द्वारा प्रदत्त नवनीतपिण्डका सुवास उन्हें अतिशय आकृष्ट किये है। सबके हृदय-मनके भीतर रहनेवाले श्रीकृष्ण आज रसवश आनन्दोपभोगके लिये परम चञ्चल हैं। आज वे सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण अदृश्य द्रष्टा नहीं, आज तो वे अपने इन्द्रनीलद्युति श्रीअंगोंकी शीतल किरणोंसे ब्रजेश्वरीके हृदयको उद्भासित कर रहे हैं, अपनी नवजलधर-कान्तिसे उन्हें सिक्त एवं अपनी परम दिव्य

सुरभिसे उन्हें सुरभित करते हुए वे आज पू.गुरुदेव के हृदयरूपी ब्रजप्रदेशको भी अपनी विहारभूमि बनांये हैं । अपने परम रमणीय बालचापल्यका प्रकाश करते हुए अहा ! पू. गुरुदेवके हृदयदेशमें वे आज अपनी कैसी विलक्षण लीला-माधुरी प्रकट कर रहे हैं । पू. गुरुदेव बस, जड़वत् क्या निहार रहे हैं, यह तो उनका स्वसंवेद्य अनुभव ही था, हम सब तो यही देख रहे थे कि उनके नेत्र सर्वथा अचंचल स्थिर हुए किसी विलक्षण रसमें डूब गये हैं। पू. गुरुदेवका रोम-रोम अपने आराध्यकी किसी विलक्षण छविको निहारता आनन्दसे बेसुध होता जा रहा था। उनके हाथ किसी परम विलक्षण सात्विक आवेशसे कम्पायमान जो हो रहे थे। रसस्रोत में डूबते-उतराते रहनेके कारण पहलेसे ही आनन्दस्थिर हुआ उनका चित्त और भी स्थिर हो उठा था। उसकी प्रबल लहरोंसे बुद्धि भी ढ़क गयी थी। पू. गुरुदेवके सामनेसे गोपालमन्दिर लुप्त ही हो गया था। वे कहाँ किस उद्देश्यसे आये हैं , स्वयं कौन हैं, उन्हें कुछ भी स्मृति नहीं रही थी। गोपालमन्दिरका पुरातन भवन, मन्दिरप्रांगण, स्तंभ, वेष्टन, दर्शनार्थ खड़े वैष्णवोंकी भीड़ – पू.गुरुदेवके सामनेसे सब विलुप्त था।

पू.गुरुदेवकी ऐसी विलक्षण दशा देखकर सभी लोगोंने यही निर्णय किया कि उन्हें शीघ्र ही उनके निवास पहुँचा दिया जाय। गोपालमन्दिरमें उस समय सम्प्रदायके काशीपीठके आचार्य, उनकी विदुषी पुत्री और परिवारके सभी वैष्णव थे। सभी पू.गुरुदेवकी मन्दिरके ठाकुरके दर्शन करते ही, हुई विलक्षण भाव-दशा देखकर मुग्ध थे। पू.गुरुदेवको मन्दिरसे लाकर उनके निवासमें भावदशामें ही बैठा दिया गया। कुछ काल पश्चात् पू.गुरुदेवकी भावदशा जब संवरित हुई तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके जिज्ञासा करने पर पू.गुरुदेवने उनसे कहा कि उनका समग्र दृश्य विलुप्त हो गया था और उनके सम्मुख बच रहे थे – नृत्यपरायण श्रीकृष्ण। उस समय एक नही, दो नहीं, अगणित श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे थे। उन्हें दृष्टिगोचर होरहा था – गोपालमन्दिरके स्थानपर नन्दभवन और जो आचार्य थे उनकं स्थानपर ब्रजेश्वरी यशोदारानी। उनको यही दृष्टिगोचर हो रहा था कि ब्रजेश्वरी यशोदारानी दधिमन्थन कर रही हैं और दधिमन्थनकी ध्वनिमें अपनी कटिकिंकणी और पदनूपुरोंका स्वर मिलाकर उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण एक नहीं, दो नहीं; असंख्य रूपमें नृत्य कर रहे हैं। अपने नीलमणिके मुखारविन्दसे प्रसरित शत-सहस्र सौन्दर्यमन्दाकिनीकी धाराओंमें अवगाहन करती ब्रजेश्वरी यशोदामैया

अपने कोटि-कोटि प्राणोंको उनपर न्यौछावर कर दे रही हैं। । दधिमन्थन करते उनके हाथ रुक जाते हैं । परन्तु श्रीकृष्णका नर्त्तन-आवेश विरमित नहीं होता। वे नाचते ही जाते हैं। यशोदामैया चकित हैं । वे निर्णय नहीं कर पातीं कौन श्रीकृष्ण उनके अपने पुत्र हैं। एक-सी आकृति, एक-सा सौन्दर्य, एक-सा नर्त्तन। सभी आकृतियोंमें किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं । प्रेमभ्रान्त यशोदारानी सभीको अपना पुंत्र मानने लगती हैं।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि इस लीलादर्शनमें वे अपने आपको ही भूल गये। बहुत काल तक उन्हें यही दृश्य दिखता रहा। बहुत काल पश्चात् जब उनका आवेश शिथिल हुआ तो उन्होंने जल पिलानेके लिये श्रीभगतजीको श्रीरामसनेहीजीको बुलानेका संकेत किया।

भगवती विशालाक्षी मन्दिरमें कृपा-चमत्कार

तीसरे दिवस सभी लोगोंके सहित पू.गुरुदेवकी नौका-यात्रा मणिकर्णिकाघाट पर ही पर्यवसित हो गयी। इस घाटको वीरतीर्थ भी कहते हैं। इस धाटके ऊपर मणिकर्णिका कुण्ड है, जिसमें चारों ओर सीढ़ियाँ हैं और इक्कीस सीढ़ी नीचे जल है। इस कुण्डकी तहमें एक भैरवकुण्ड भी है। इस कुण्डका पानी प्रति आठवें दिवस निकाल दिया जाता है, और एक छिद्रसे स्वच्छ जलधारा अपने-आप निकलती है, जिससे कुण्ड भर जाता है। वीरेश्वरमन्दिर इस घाटका मुख्य मन्दिर है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा और सभी साथ आये लोगोंने इस वीरेश्वरतीर्थका जल अपनेपर छिड़का और वीरेश्वरमन्दिरके दर्शन किये।

वीरेश्वरमन्दिरके दर्शनोंके पश्चात् सभी लोग विशालाक्षी-मन्दिरके दर्शन करने गये। भारतवर्षके इक्यावन शक्तिपीठोंमेंसे एक शक्तिपीठ काशीमें यह विशालाक्षी-क्षेत्र है। यहाँ भगवती सतीका दक्षिण कर्ण-कुण्डल गिरा था। इन भगवती विशालाक्षीके भैरव कालभैरव हैं। हम लोग जब विशालाक्षीमन्दिर पहुँचे तो पुजारी मन्दिरमें देवीका नित्यकालीन पूजन करके, मन्दिरमें ताला लगाकर अपने घर चला गया था। वैसे मन्दिरके मुख्यद्वारके कपाटमें लोहेके

छड़ लगे होनेसे बाहरसे ही भगवतीकी मूर्तिका दर्शन संभव था, किन्तु मन्दिरके द्वार-पट बन्द होनेसे पू.गुरुदेवमें एक अति वात्सल्यभरा निर्मल भाव जाग्रत् हो उठा था। वे मन ही मन मातृ-वात्सल्यमें भरे अपनी माँ योगमाया के सम्मुख हठ करके बैठ गये थे। पुजारीका तो प्रतिदिनका ही नियम था कि वह निरे प्रभात आता था एवं गंगास्नान करके, यथावश्यक पूजन संपादितकर, गत रात्रिको लोहेके सीखचोंयुक्त कपाटोंमेंसे फेंकीगयी भेंट-मुद्रा बटोरकर, घण्टे-आधे घण्टेमें ही मन्दिरपट बन्दकर चला जाता था। अब तो वह सायंकालको मात्र आरतीके समय आयेगा और माताकी आरतीकर दिवस-पर्यन्तकी भेंट-मुद्रा लेकर अपने निवास-गृह चला जायगा। उसका निवास भी मन्दिरस्थलसे बहुत दूर मुगलसराय क्षेत्रमें है, और यहाँसे किसी परिचित व्यक्तिको भेजकर उसे बुलाना भी संभव नहीं दिखता था। मन्दिरके आसपास रहनेवाले लोगोंसे इस विषयमें जब वार्त्ता की गयी तो उन्होंने भी यही मत पुष्ट किया कि वह अपने निवासस्थानमें भी दिनमें उपलब्ध नहीं होता। आजीविकार्थ कहीं अन्यत्र सेवाकार्यमें चला जाता है। इधर तो स्थिति यह थी और उधर पू. गुरुदेव अपने हठी स्वभाववश ऐसा निर्णय कर चुके थे कि जबतक पुजारी मन्दिरका पट उन्मोचन न करे और वे अपनी माँकी पूजा सम्पादित नहीं करें, यहाँसे हिलेंगे भी नहीं। वे प्रायः भगवान्‌की शक्तिके बलपर असंभवको भी संभव करनेका संकल्प कर लेते थे। वे मुझसे प्रायः यही कहा करते थे कि भला भैया, बतला तो, भगवान्‌की कृपा जिसे दूर नहीं कर सके, ऐसा भी कोई अवरोध जगत्‌में संभव है क्या ?

पू.गुरुदेवके पास और तो कोई बल था नहीं, मात्र अकिंचन संन्यासी ही तो वे थे, अपनी माँ योगमाया जगज्जननीकी कृपाशक्तिका आह्वान करते हुए वे अन्तश्चेतनाके जगत्‌में पहुँच जाते हैं। उनके सम्मुख जगज्जननी भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी ध्यानस्थ मूर्त्ति प्रकट हो जाती है। वे प्रार्थना कर उठते हैं— " "माते ! तेरे सुप्रकट वात्सल्यके बलपर मैं तेरा हठी बालक तुझसे अनहोने कार्योंके सम्पादनकी याचना कर बैठता हूँ। माँ ! मैं तेरे द्वारपर आऊँ और तेरे द्वारपट मुझे अवरुद्ध मिलें, क्या यह उचित है ? तेरे वत्सल स्वभावको निरखता हुआ मैं तुझसे किसी मेरे-तेरे मध्य आये अवरोधको दूर करनेकी याचना करूँ, क्या यह याचना तेरे वात्सल्यपर कलंक नहीं है ? माँ ! उचित तो यही होता कि मेरे आने के पूर्व ही तू सर्वबाधा-विनिर्मुक्त हुई मेरी प्रतीक्षा

करती मुझे उन्मुक्त-द्वार बाहर ही खड़ी दिखती ! किन्तु तेरे द्वार-देशकी चौखटपर खड़ा मैं तुझे लौह-कपाटोंके भीतर खड़ी देखूँ और तेरी परम वात्सल्यभरी गोदमें अपने को शिशुवत् नहीं समर्पित कर पाऊँ, क्या यह तेरे परम वत्सल स्वभावको देखते हुए शोभनीय होगा ?

पू.गुरुदेव अपनी माताकी गोदमें छोटे-से शिशु बने उसके अति वात्सल्यभरे दुग्धस्रावी स्तनोंकी कर्णिकाको मुखमें लिये अतिशय भावपूर्वक अपनी छोटी-छोटी दुग्ध-दंतपंक्तिसे उन्हें काटनेकी क्रिया कर बैठते हैं । उनके लघु शिशु-सुकोमल हाथ अपनी माँके स्तनोंको पकड़ लेते हैं और स्तनाग्रभागसे स्रवित भाव-दुग्धका पान करते, वे अपनी माँके कृपावत्सल नेत्रोंमें अपने शिशुनेत्र मिला देते हैं।

एक आश्चर्य घटित होता है। हममेंसे किसीको आशा नहीं थी कि पुजारी मन्दिरमें इस समय आ पहुँचेंगे। परन्तु बिना प्रयास किये ही अनिमन्त्रित ही शीघ्र गतिसे कदम बढाता मन्दिरका पुजारी मन्दिर-द्वारपर पहुँच जाता है। वह हम सभीको मन्दिरके मुख्यद्वारपर खड़ा देख मुसकाता है। वह कहता है कि आज प्रातः उससे प्रमादवश पूजा करते-करते ऐसी त्रुटि हो गयी कि जिस मीलमें वह काम करता है, उसका प्रवेशपत्र ही वह मन्दिरमें रखकर भूलगया। इस प्रमादसे उसे अर्धदिवस तो मीलसे अवकाश लेना ही पड़ा । शेष आधे दिवसका अवकाश वह किसी प्रकार बचा ले – इस प्रयासमें शीघ्रतापूर्वक उसे मन्दिरमें पुनः लौटना पड़ा है ।

पुजारीसे हमने जब पू. गुरुदेवके हठका कथन किया, तब तो वह और भी श्रद्धाभिभूत हो उठा। किन्तु पू. गुरुदेव तो दूसरी ही धुन में थे। वे माताकी अपने भावानुसार पूजा करना चाहते थे और पूजाके लिये उन्हें कदम्बवृक्षके पुष्पकी आवश्यकता थी। उस पुष्पकी कहींसे व्यवस्था हो, और उसमें जो कालक्षेप हो, इतने कालके लिये पुजारी रुकनेमें अरुचि प्रकट कर रहा था।

पुजारीको प्रलोभन भी दिया गया कि उसकी मीलमें जो भी अनुपस्थितिजन्य आर्थिक क्षति होगी, वह पूर्त्ति कर दी जायगी। परन्तु वह कह रहा था कि उसे अनुपस्थितिके कारण नौकरीसे हटाया भी जा सकता है। किसी प्रकार बहुत प्रयाससे तो उसे मीलमें नौकरीका अवसर मिला है। अतः उसका आग्रह था कि जो भी पूजा-सामग्री वह पू.गुरुदेवको दे, वे उसीसे पूजा करलें। पू.गुरुदेव तो कदम्बपुष्पके अभावका सामञ्जस्य किसी अन्य पूजन-

सामग्रीसे करनेको तैयार ही नहीं हो रहे थे। पुजारीको हम लोग किसी प्रकार मनानेका प्रयास करते जा रहे थे। इतनेमें ही हमें एक वृद्ध ब्राह्मणने संदेश दिया कि उसके घरपर पुष्पित कदम्बवृक्ष है। किन्तु उस वृक्षसे पुष्पचयनमें अतिशय कठिनाई है। पुष्प ऐसे स्थानोंपर लगे हैं , जहाँसे चयन होना कठिन ही नहीं, असंभव-सरीखा है। पू.गुरुदेव तो इस सूचनाके मिलते ही मुझे लेकर कदम्बवृक्षके स्थानकी ओर चल पड़े। वह कदम्बवृक्ष एक पीपलके वृक्षके भीतरसे ही प्रस्फुटित हुआ इतना विशाल और उच्च था कि उसपर चढ़कर पुष्पचयन करना असंभव था। ब्राह्मणदेवता तो स्वाभाविक ही भूमिपर स्खलित, धूसरित, मुरझाये पुष्प हमें देना चाहते थे, जो पू. गुरुदेवको कदापि स्वीकार्य नहीं थे। मैंने देखा पू.गुरुदेव तो अपने गैरिक वस्त्रको फैलाकर उस कदम्बवृक्षसे पुष्पदानकी भिक्षा माँगने घुटनोंके बल बैठ गये । उन्हें तो वह कदम्बवृक्ष चिन्मय जीवन्ततुल्य दिख रहा था, जो उनके माँगनेपर उन्हें अपने पुष्प दान कर ही देगा।

मुझे तो यहाँ भी अतिशय आश्चर्य ही घटित होता दिखाई पड़ा। सचमुच ही पू.गुरुदेवके अंचल फैलाते ही अनेक कदम्बपुष्पोंसे उनका अंचल भर गया था। कदम्बवृक्षकी ओर नेत्र उठाकर ज्योंही मैंने देखा तो पाया कि एक मादा शुक पक्षी जो अति पुरातन उस पीपलवृक्षके कोटरमें अपने शावक-प्रसव करनेकी योजना बना रही थी, संलग्न कदम्बवृक्षसे पुष्प अपने घौंसलेके निर्माणके लिये तोड़ती है और उनमेंसे कुछको अनुपयुक्त समझ सीधे पू. गुरुदेव द्वारा प्रकीर्ण गैरिक वस्त्रांचलपर गिरा दे रही है। वह पुनः-पुनः इसी प्रक्रियाको दोहरा रही है। मैं माँ जगज्जननीकी पू.गुरुदेवपर संभावित कृपाकी सचमुच ही जय-जयकार कर उठा।

अपनी माँके विलक्षण भक्त थे पू.गुरुदेव । यद्यपि यावज्जीवन मैंने उनका हठ उनकी किसी भी लौकिक कामनाकी पूर्त्तिके लिये नहीं देखा किन्तु अपनी नैष्ठिक पूजाओंके सम्पादनार्थ जब वे विशुद्ध व्यवस्थाओंमें अपनी माँकी सहायताकी माँग कर बैठते थे, तो फिर हठ पकड़ लेनेके अनन्तर उसे छोड़ देना उन्होंने सीखा ही नहीं था। अनुनय-विनय करते हुए अपने भावशिशु-स्वरूपमें अपने करपल्लवोंसे वे अपनी माँ जगज्जननी योगमायाकी स्तन-कर्णिकाको अपनी दुग्ध-दंतपंक्तिसे काट डालते थे, और अपनी व्यवस्था-पूर्त्तिके लिये अड़ जाते थे। उनका वात्सल्यभरा माँको रिझानेका

स्वनिर्मित मंत्र था – 'माँ-माँ, मैया-मैया, जननी-जननी, अम्बे-अम्बे, जगदम्बे-जगदम्बे'। इस मंत्रका वे अनवरत मन-ही-मन उच्चारण करते रहते थे और इस मंत्रके विलक्षण अर्थकी अनुवृत्ति भी करते जाते थे ।

अन्ततः यही होता था कि उनकी ध्यानमूर्तिके रूपमें प्रकट उनकी माता जगज्जननी योगमाया शत-शत अवरोध-अनुरोध करती हुई, अपने पुत्रंकी अभिलाषाओंको नितान्त अव्यावहारिक बताती-जताती हुई भी, बंड़े वेगसे सिर हिलाकर तथा 'नहीं-नहीं' 'यह तो होनेकी ही नहीं'–मुखसे भी स्पष्ट कहकर अपना निर्णय सुना देनेके उपरान्त भी जब पू. गुरुदेवको अपने हठपर अड़िग पाती, तो अनुत्साहित चित्तसे ही सही, अन्ततः जगज्जननीको उनका अनुमोदनकर कार्य सिद्ध करना ही होता था । पूजन समाप्तकर पू. गुरुदेव अति प्रसन्नचित्तसे मुसकाते हुए मन्दिर प्रांगणमें खड़े हो जाते हैं ।

अन्नपूर्णा मन्दिरमें भगवतीके साक्षात् दर्शन

उसी समय उनकी सांगोपांग अतिशय भावभरी एवं शास्त्रविहित परम सात्विक पूजासे प्रभावित श्रद्धाशील वह ब्राह्मण जो अपने गृह ले जाकर पू. गुरुदेव को कदम्ब वृक्षका अनुसंधान देता है, प्रार्थना कर बैठता है कि पू. गुरुदेव जब गोरखपुरसे काशी पदार्पण किये हैं, एवं सभी तीर्थ-मन्दिरोंके यथावत् दर्शन-अर्चन कर ही रहे हैं, तो अन्नपूर्णामन्दिरमें तंत्राचार्य श्रीभास्करराय द्वारा स्थापित यंत्रेश्वर लिंग – जिसपर श्रीयंत्र अंकित है, उसका पूजन अवश्य करें। पू.गुरुदेवके इतना कहनेपर कि यहाँसे वे काशी-अन्नपूर्णा मन्दिर ही जायेंगे, वह ब्राह्मण पू. गुरुदेवके साथ चलनेको भी तत्पर हो उठा था।

विशालाक्षी मन्दिरसे लगभग दो फर्लांग चलकर हम अन्नपूर्णा मन्दिर पहुँचे थे। यह दूरी हमें सँकरी गलियोंमें पार करनी पड़ी थी। किंवदन्ती है कि जब भूतभावन भगवान् विश्वेश्वरने काशीको अपना स्थायी धाम बना लिया तो उनका भिक्षापात्र कभी भरता ही नहीं था। फलतः शिवजी महाराज क्षुधातुर रहने लगे। एक बार वे पार्वती देवीके पास पहुँचे और उनसे क्षुधा-निवृत्तिका उपाय पूछा! हँसकर पार्वतीने उनका भिक्षापात्र परिपूर्ण कर दिया। तभीसे माता पार्वतीदेवीका ही एक नाम अन्नपूर्णा हुआ।

पू.गुरुदेवने ज्योंही अन्नपूर्णा मन्दिरमें प्रवेश किया, मैंने देखा उन्हें मानों अपने प्राणोंकी निधि ही प्राप्त हो गयी थी। उनमें विशुद्ध सात्विक भावोंका प्रवाह ही उमड़ पड़ा था। भगवतीका दर्शन करते-करते वे शान्त खड़े ही रह गये। मैंने देखा – जड़िमा भावोदयसे उनके समस्त अंग अवश हो रहे हैं। उनमें गतिका संचार तो तब हुआ जब भगवती अन्नपूर्णा स्वयं एक मानवी सुन्दर युवतीका रूप रखकर स्थिरनेत्र दर्शन करते उन्हें स्पर्श करने उनके पास चली आयीं । चौंककर पू. गुरुदेव छिटककर शीघ्रतापूर्वक उस स्त्रीसे दूर हुए। वह मानवी स्त्री बनी माता पार्वती अन्नपूर्णामन्दिरकी परिक्रमा करने लगी और पू. गुरुदेव पुनः निर्निमेष नयनोंसे माँकी मूर्तिपर अपनी दृष्टि स्थिर करने लगे। इस बार वे किंचित् सावधान थे। इस बार भी वह मानवी स्त्री जब पू. गुरुदेवके अति निकट आई तो स्पर्शाशंकासे पू. गुरुदेवको पुनः छिटककर दूर हटना पड़ा और वे स्त्रीरूपधारी भगवती पुनः परिक्रमाको उन्मुख हो गयीं। तीसरी बार भी जब यही आवृत्ति होनेवाली थी और वे माताजी पू.गुरुदेवके इतनी निकट आ गयीं कि मानों स्पर्श हो ही जायगा तो पू.गुरुदेव अति जोरसे बोल उठे– " माँ ! बारबार यह अनर्थ क्यों कर रही हो ? तुम जान रही हो, मैं एक चतुर्थाश्रमी यतिवेशी संन्यासी हूँ और तुम युवती स्त्री हो। यह सत्य है कि मेरी पावनतम दृष्टिमें तुम साक्षात् जगज्जननी ही हो किन्तु एक यतिकी मर्यादाको खण्डित करनेका यह अनवरत प्रयास क्यों हो रहा है ? "

ओह ! पू.गुरुदेवने स्पष्ट देखा कि उस मानवी युवतीका रूपान्तरण भगवती जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरीके रूपमें तत्क्षण ही हो गया और बालरवि-द्युति अनन्तानन्त प्रज्ज्योति उस मानवी स्त्रीके नेत्रोंके द्वारसे उनमें प्रविष्ट होती हुई उनके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गयी। इस मिलन-सुखका कोई क्या कहकर वर्णन करे !

पू.गुरुदेवको वैसे तो भगवती त्रिपुरसुन्दरीके साक्षात् दर्शन सन् १९५१ ई.में ही हो चुके थे और यह घटना जनवरी सन् १९५६ ई.की है। इस चार-साढ़े चार वर्षकी अवधिमें इन भगवती अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाने पू. गुरुदेवका ऐसा मन-मानस निर्माण कर दिया था कि उन्हें सर्वत्र माँ त्रिपुरसुन्दरी ही व्याप्त दृष्टिगोचर होती थी । माँ त्रिपुरसुन्दरी ही पू.गुरुदेवके हृदयके अन्तर्भागमें उनके प्राण-प्रियतम नन्दनन्दन बन गयी थीं। वैसे बाह्यदृष्टिमें पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराज की तरह ही सर्वथा जागरूक रहते हुए सभीसे सभी

व्यवहार यथायोग्य करते थे। किन्तु सभी मिलनेवालोंको उनके नाम एवं आकृतिसे ठीक पहचानंते हुए, उनसे ठीक यथानाम, यथासम्बन्ध, यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी, वे वस्तुतः पूर्णतया केन्द्रित रहते थे, तन्मय रहते थे अपने आराध्य नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही, जो उनके लिये उनकी माँ भगवती त्रिपुरसुन्दरीका ही स्नेह-सार -संचय स्वरूप था। पू.गुरुदेव इस सत्यसे पूर्णतया परिचित थे कि उनको श्रीकृष्ण-लीलागत समग्र सुख देनेके लिये ही अचिन्त्यमहिमामयी योगमाया चिदानन्दमय ब्रजप्रदेश बनकर उनके सम्मुख प्रकट होती हैं। उनकी बृषभानुपुरी नन्दपुरी गिरि-गोवर्धनकी सुरम्य तलहटी, यमुनानदी एवं चिदानन्दमयी रासस्थली आदि जो भी हैं सभी भगवती योगमायाकी ही संधिनीशक्तिकी नित्य परिणति हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरीके तुल्य ही ये सभी पूर्ण विभु, नित्य और सच्चिन्मय हैं । ये अनादिकालसे हैं और अनन्त कालतक रहनेवाली भी हैं ।

वे यह भी सर्वांशमें सत्य जानते थे कि इन सच्चिन्मयी लीलाओंका किसीके भी हृदयमें तभी प्रकाश होता है, जब प्रथमतया माँ भगवतीका उसके हृदयमें आविर्भाव होता है। यह सभी लीलाजगत् भगवतीका ही चिन्मय प्रेमविलास है। उन्हें यह भी ठीक ज्ञात था कि जिनके नेत्रोंमें भगवती जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरीकी चरणनख-चन्द्रिकाका नित्य प्रकाश है, उनके लिये प्रियतम श्रीकृष्ण करतलगत आमलकवत् हैं, एवं वे ही सच्चे ब्रजपुर और बृन्दावनका सच्चिन्मय लीलारस आस्वाद कर पाते हैं।

ओह ! शब्द नहीं कि पू.गुरुदेवको जो भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सौन्दर्यराशिका उस समय दिग्दर्शन हुआ उसे सुव्यक्त कर सकें। माँ भगवतीकी ओर-छोरविहीन महिमाको भला कौन भाषा दे पावेगा ? इसलिये हार कर मौन ही होना पड़ता है।

श्रुतियाँ कहती हैं कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके सूर्य मिलकर भी जिनकी एक रोमावलिके प्रकाशके सम्मुख खद्योतवत् भी नहीं हैं फिर चन्द्र, तारकसमुदाय और अग्निकी तो बात ही क्या कही जावे ! अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिनकी रोमावलिकी परिक्रमा करते हैं, वे अनन्त ज्योतिर्मयी माँ पू. गुरुदेवके सम्मुख व्यक्त हुईं और नेत्रपथसे उनके रोम-रोममें निमग्न हो गयीं। पू.गुरुदेव कृतकृत्य हो उठे ।

पाठकगणोंमें कोई प्रश्न कर सकता है कि पू.गुरुदेवके रोम-रोममें

भगवतीके सच्चिन्मय तेजके विलय होनेके पश्चात् तो उनमें अनन्त चमत्कारोंको करनेकी सामर्थ्य आ ही जानी चाहिये थी। वे अनन्त शक्ति-सामर्थ्यके अधिपति हो उठे थे, तो उस शक्ति-सामर्थ्यकी अभिव्यक्ति भी तो संसारके सम्मुख हुई ही होगी ! पाठकोंके इस प्रश्नका मेरे पास एक ही उत्तर है कि पू.गुरुदेव भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी परम रसमयी प्रीतिलीलाके परिकर थे। वे उस समय भगवती श्रीराधारानीकी अनुजा मंजुश्यामा (अनंग-मञ्जरी)की भावभूमिमें पूर्णतया आविष्ट थे। रसराज ब्रजेन्द्रनन्दन यदि अपने लीला-परिकरोंमें जागतिक माया-प्रपंचभूमिकी सिद्धियाँ प्रकट करने लगें तब तो उनकी अनाविल मधुरिमामय लीला-रसपानका और साथ ही विशुद्ध रसदानका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जायगा। अतः न तो पू. गुरुदेवको ही उस समय यह ज्ञान हुआ कि उनमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृजन-स्थिति एवं प्रलयकर्त्री माँ योगमायाका पूर्ण शक्तिपात हो गया है , और न ही उनके शेष जीवनमें ही किसी विशेष सिद्धियोंका परिचय ही हमें मिलता है। अतः बाहरसे तनिक भी, कुछ भी विशेषताकी गन्ध न दे कर, किसी भी अस्वाभाविकताका प्रकाश न करके, अचिन्त्य लीलामहाशक्ति एक घड़ीमें ही पू गुरुदेवको पूर्ववत् ही यथायोग्य आचरण करनेवाला बना देती हैं।

यदि कोई कहेगा कि इस विलक्षण भागवती दर्शनका महत्व ही फिर क्या हुआ ? तो इसका उत्तर है कि महत्व अवश्य हुआ है, निश्चय ही हुआ है। इस भगवती दर्शनका महत्व प्रापंचिक जगत्में प्रापंचिक चमत्कारोंके रूपमें प्रकट भले ही नहीं हुआ हो, किन्तु पू.गुरुदेवके भावशरीर मञ्जुश्यामाको श्रीराधाभावमें डूब जानेकी प्रक्रियामें इस दर्शनने विलक्षण भूमिकाका सृजन अवश्य किया है। यह घटना जनवरी, १९५६ ई. की है और पू. गुरुदेव श्रीराधभावमें ८ अप्रेल, १९५७ ई. को प्रतिष्ठित हो गये थे। लगभग पन्द्रह माह पश्चात् ही जो उनमें भगवती श्रीराधाजीका पूर्ण भावोन्मेष हो गया, यह क्या भगवतीके कृपाप्रकाशका चमत्कार नहीं था ? हम जड़ान्ध लोग प्रत्येक पारमार्थिक उपलब्धिको जड़तायुक्त प्रापञ्चिक शक्तियोंसे ही जोड़ते हैं। हमारी आँखें इस जड़ जगत्के परे कोई सच्चिन्मय लोक है, उस लीला-लोकके सच्चिन्मय लीलापात्र हैं, उन पात्रोंमें अनन्त प्रीति-भावोंका उद्दाम प्रवाह लहराता रहता है, उसमें प्रीति, रति, नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभावादि स्तर हैं, इन स्तरोंकी उपलब्धि भी भगवती कृपा-सापेक्ष है – इस सबको कहाँ देख पाती हैं। पू.गुरुदेवके लिये तो अचिन्त्य महिमामयी भगवती अपनी

विलक्षण कृपाका प्रवाह बहा रही थी, किसी विशेष उद्देश्यसे उसके सारे **कि** ाानका आडम्बर ही इसलिये हो रहा था कि सच्चिदानन्दमय परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी विभु प्रीति-लीलाके वे सर्वोच्च प्रेमपात्र हो सकें। अतः उस भागवती विलक्षण दर्शन और शक्तिपात्से बाह्य कोई विशेष चमत्कार संघटित नहीं होते हुए भी भगवतीने पू.गुरुदेवको विलक्षण भगवत्प्रीतिशक्तिसे आप्लावित कर दिया।पू. गुरुदेवको भगवती योगमायाने जिस चिन्मय प्रीति-वैभवका उस दर्शनसे दान किया, जिसे किसी भी लेखककेखनीमें सामर्थ्य नहीं कि उसकाचित्रण कर सके। चित्रण तो दूर, मनकी कल्पना भी वास्तवमें उस विचित्र प्रेम-वैभवके किसी एक अंशको भी –उस सर्वथा अतुलनीय नित्य चिदानन्दमय श्री-सौन्दर्यकी कणिकामात्रको भी छू नहीं सकती। उस प्रेम-वैभवदानकी तो मात्र अनुभूति हुई और वह अनुभूति हुई, पू.गुरुदेवको स्वयंको, अथवा पू. पोद्दार महाराजको ? इन्हें क्या अनुभूति हुई, यह बताना भी असंभव है। हाँ, पोद्दार महाराजको जो अनुभूति हुई उससे वे आनन्द-कम्पित कण्ठसे अपने शिष्यके सौभाग्यपर वाह-वाह कर बैठे। पू.गुरुदेवको स्वयंको जो अनुभूति हुई, उस आनन्दसिन्धुमें वे ऐसे डूबे कि लोगोंने काष्ठमौनके रूपमें उनकी अनवरत गंभीरादशामें महाभावमयी स्थितिका प्रत्यक्ष दर्शन किया।

अन्नपूर्णामन्दिरसे पू.गुरुदेव कादि-विद्याके प्रसिद्ध आचार्य भास्कर भट्ट द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीचक्रराजयंत्रेश्वर महादेवके दर्शन करने गये। यह यंत्रेश्वर मन्दिर श्रीअन्नपूर्णामन्दिरके प्रांगणमें भूमिके नीचे बने एक गुंभारमें स्थित है। भगवान् नर्मदेश्वर लिंगके शिरोदेशमें अंकित इस यंत्रेश्वरको सच्चे भगवतीके साधक साक्षात् देवतातुल्य ही महत्व देते हैं। इस यंत्रेश्वरके दर्शन करते ही पू.गुरुदेवमें इनकी सांगोपांग पूजा-अर्चना करानेकी वृत्ति जाग्रत् हो गयी । पू. गुरुदेवको विचारदशामें देख विशालाक्षी मन्दिरसे आये ब्राह्मणदेवताने उनकी चिन्ताके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। ब्राह्मणदेवताके सम्मुख पू.गुरुदेवने अपनी चिन्ताका यही विषय प्रकट किया कि उन्हें पूर्णाभिषेकपर्यंत श्रीविद्या-दीक्षित किसी शुद्धचरित्र ब्राह्मणका – जो पूर्ण श्रीक्रमविधिसे पूजा करनेमें पारंगत हो, इस यंत्रेश्वरकी पूजाके लिये सहयोग चाहिये। उस ब्राह्मणदेवताने इसके उत्तरमें यही कहा कि पूर्ण शुद्ध श्रीक्रमपद्धति और पूर्ण श्रीविद्यादीक्षित ब्राह्मणका सहयोग इस समय दुरूह है । काशीमें इसका अभाव तो नहीं होगा, किन्तु उसके अन्वेषणमें पूरी कठिनाई अवश्य है। आप यहाँ अल्प अवधितक ही

ठहरने वाले हैं, अस्तु आप महर्षि अथर्वण रचित भावोपनिषद् द्वारा ही यह भावपूजा सम्पादित कर दीजिये।

पू.गुरुदेवको उन ब्राह्मणदेवताकी यह बात सांगोपांग लगी। पू.गुरुदेव एवं ब्राह्मणदेवताने उसी क्षण विचार-विमर्शकर यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिवस शुक्रवारको पू.गुरुदेव श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा इस महासिद्ध श्रीयंत्रराजका महर्षि श्रीअथर्वण विरचित भावोपनिषद् द्वारा पूजन सम्पादित करावेंगे। विशालाक्षी मन्दिरके निकट रहनेवाले वे ब्राह्मणदेवता हम लोगोंके साथ ही वहाँसे गायघाट स्थित डालमियाकोठी पहुँचे और फिर उन्होंने ही पू. गुरुदेवको भावोपनिषद्‌की पुस्तक लाकर दी। यह भावोपनिषद् का श्रीपूजाक्रम पू.गुरुदेवको इतना प्रिय लगा कि उन्होंने श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीसे इसे संशुद्ध कराके उनके हस्ताक्षरोंमें ही लिपिबद्ध कराया और उसकी एक प्रति स्वयं अपने पास रख ली । दूसरी एक प्रति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके पास यावज्जीवन रही। जब यह तीर्थयात्रा-ट्रेन मद्रास पहुँची तो वहाँ भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूजन इसी प्रयोगपद्धतिसे सम्पादित हुआ था। पू.गुरुदेवको पश्चात् यह पूजाक्रम कण्ठस्थ हो गया था और उपने काष्ठमौनकालमें भी वे प्रति शुक्रवार इस पद्धतिसे पूजा सम्पादित करते थे।

{यह समग्र पूजापद्धति 'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा (द्वितीय–तृतीय खण्ड) नामक ग्रन्थमें मातृपूजा-प्रकरणमें पृष्ठ सं० ३०१में विस्तारपूर्वक हिन्दी-अर्थसहित दी गयी है। जिज्ञासुजनोंको वहाँ देखना चाहिये}

चित्रकूटमें विचित्र अनुभव

(प्रथम दिवसकी यात्रा)

तीर्थयात्राके लिये जो तिथि निर्धारित की गयी थी, उसके अनुसार २७ जनवरी,१९५६ के दिन तीर्थयात्राट्रेनने वाराणसीसे प्रस्थान किया। प्रस्थानके पूर्व काशीके विद्वान् पण्डितोंके द्वारा भगवान् विघ्नविनाशन गणेशजी एवं अन्य देवताओंका वेदमन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करवाया गया और भगवन्नाम-संकीर्त्तन एवं उद्घोषके उपरान्त ही ट्रेन वाराणसी स्टेशनसे चली।

वाराणसीसे चलकर प्रातःकाल ट्रेन करवी स्टेशन पहुँची। करवी स्टेशनपर प्रातःकाल पहुँचते ही प्रार्थना एवं संकीर्त्तन कार्यक्रम पू.गोस्वामीजीके नेतृत्वमें सभी तीर्थयात्रियोंने किये। उसी समय आसपासके दर्शनीय स्थानोंकी जानकारी यात्रियोंको छपे हुए परिपत्रों द्वारा दे दी गयी। चित्रकूटमें ट्रेनको दो दिन रुकना था।

वैसे चित्रकूट सदैवसे ही तपोभूमि रही है। महर्षि अत्रिका यहाँ आश्रम था। उसके आसपास अन्य बहुतसे ऋषि-मुनि रहते थे। उन दिनों वनोंमें महर्षियोंके कुल रहा करते थे। किसी एक तेजस्वी, तपोधन, शास्त्रज्ञ ऋषिके सहारे आसपास दूसरे तपस्वी, साधननिष्ठ मुनिगण आश्रम बना लेते थे। सत्संग तो वीतराग पुरुषोंको भी प्रिय है ही। इस प्रकार चित्रकूटमें सदैवसे ही एक बृहत् तपस्वी-समाज था और उसके संचालक थे महर्षि अत्रि। वहाँकी पूरी भूमि ही एक समय देवोत्तर पुरुषोंकी पदरजसे पुनीत थी।

चित्रकूटका सबसे बड़ा माहात्म्य ही यह है कि भगवान् श्रीरामने यहाँ निवास किया। यह भूमि भगवान् रामकी वर्षोंतक क्रीड़ाभूमि रही। भगवान् राम इस भूमिके सदैवके ही वासी हैं। यहाँ वे नित्य निवास करते हैं। अधिकारी भगवद्भक्तोंको भगवान् रामके यहाँ प्रायः दर्शन होते हैं। यहाँ तपस्वी, भगवद्भक्त, विरक्तजन सदासे रहे हैं। उनकी परम्परा अविच्छिन्न चलती आयी है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने किस आतुरतासे अपनेको चित्रकूटमें निवास करनेके लिये कहा है, देखते ही बनता है।

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
न करु विलम्ब विचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगले पलु।।

महात्माओंका कथन है कि कलियुगने समस्त संसारपर अपना जाल बिछा दिया, पर प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे अद्यावधि चित्रकूट उससे मुक्त है। मनुष्य जबतक चित्रकूटके पर्वतशिखरोंका अवलोकन करता रहता है, तबतक वह कल्याण-मार्गपर चलता रहता है। उसका मन मोह-अविवेकमें नहीं फँसता। इस पावन भूमिमें प्रवेश करते ही नल, युधिष्ठिर आदिका घोर कष्ट मिट गया था।

चित्रकूटमें पू.गुरुदेवने राघवप्रयागमें स्नान किया एवं कामद गिरिकी परिक्रमा लगायी। पयोष्णी नदीके किनारे धनुषाकार एक नाला मिलता है, जिसे मन्दाकिनी कहते हैं। कहते हैं भगवान् श्रीरामने इसी घाटपर स्वर्गीय महाराज दशरथको तिलांजलि दी थी। यहाँ मत्तगजेन्द्रेश्वरका मन्दिर भी है। पयस्विनी नदीके तटपर चौबीस पक्के घाट हैं जिनमें चार मुख्य हैं– १. राघवप्रयाग २. कैलासघाट ३. रामघाट ४. घृतकुल्याघाट ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके रहनेके दो स्थान चित्रकूटमें प्रसिद्ध हैं। एक तो रामघाटके पास गलीमें और दूसरा कामदगिरिकी परिक्रमामें चरणपादुकाके पास।

पू.गुरुदेव कामदगिरिकी परिक्रमा करके मन्दाकिनीजीके तटपर बाँयी करवट लेटे हुए थे। उन्हें तन्द्रा भी नहीं थी। सहसा उनका भावजगत् बदला। वे अनुभव करने लगे – वे एक सुरम्य वनमें विचरण कर रहे हैं। जड़ वनकी तरह इस वनका रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्थिति तथा गुण नहीं है। वनकी शोभा अवर्णनीय है। विहंगम मधुर कलरव करते वृक्षोंपर आसीन अपना चांचल्य प्रकाश कर रहे हैं। मृगोंके दल मण्डलाकार हुए सब दिशाओंकी ओर मुख किये शान्त बैठे मन्द-मन्द रोमन्थन (पागुर) करनेमें तल्लीन हैं। मधुपानसे मुग्ध मधुकरवृन्द इत-स्ततः गुंजार कर रहे हैं। सर्वत्र संचारित मन्द समीर आनन्दसे पुलकित है। पृथ्वीपर सर्वत्र अंकुरराशिका आस्तरण है। सचमुच ही ऐसा लगता है मानो धरा-सुन्दरी रोमाञ्चित हो उठी है और यह अंकुरराशि उसका पुलकोद्गम है। अटवी सचमुच ही इस समय एक अभिनव गान, नृत्य, पुलकोद्गम आदि अगणित अनुभावोंमें आनन्द व्यक्त कर रही है।

वृक्षोंपर पके-पके मधुर फल गुच्छोंमें लटक रहे हैं। फलोंके भारसे वृक्षोंकी शाखायें भूमिकी ओर अवनत हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है मानो वृक्ष छोटे-छोटे हों। उन फलोंकी सुन्दरता और कान्ति अनोखी है। वनमें अति लघु

आकारके कासार (तालाब) हैं। इनमें प्रस्फुटित पद्म हैं। लता- वल्लरियोंपर सुन्दर पुष्प खिले हैं। सम्पूर्ण वनकी शोभा आश्चर्यमयी है। पू.गुरुदेवके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं कहाँ हूँ, यह कौनसा स्थान है, इस वनका नाम क्या है ? किन्तु इस नितान्त निर्जन स्थलमें वे इस वनका नाम भी किससे पूछें ? वहाँ तो उनके सिवा अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। चारों ओर है घोर सघनता और नीरव निर्जनता।

जो भी हो, पू.गुरुदेवको वनकी शोभा अतिशय प्रिय लग रही थी। सहसा उन्होंने देखा कि वनमें एक सुन्दर श्यामवर्णका बालक विहरण कर रहा है। वह बालक पू.गुरुदेवकी ओर कभी-कभी निहार उठता है। वह बालक पू. गुरुदेवको नव-नव निकुञ्जस्थलीकी ओर संकेत करके वहाँकी अनुपम शोभा दिखाकर प्रफुल्लित होता है। वह पू.गुरुदेवको एक-से-एक सुन्दर स्थानोंका दिग्दर्शन कराता वह ऐसा विश्वस्त है मानो यहाँके प्रत्येक पथसे परिचित हो। दल-के-दल मृग एवं मयूर उस बालकके पास शुभ शकुन प्रकट करते आते है, ललकभरे नेत्रोंसे उसकी ओर देखते हैं, और फिर चौकड़ी भरते, सघन वनकी ओटमें छिप जाते हैं। उनका अनुसरण करता वह बालक भी इस कुंजसे उस कुंजमें, कभी किसी कासारतटकी ओर, कभी तटसे पुनः वनकी ओर, कभी वनसे कल-कल बहती मन्दाकिनी-कूलकी ओर अनवरत विचरण कर रहा है। उस बालकका सौन्दर्य और लावण्य भी इतना अनोखा था कि पू.गुरुदेवका मन उसपर मुग्ध हो रहा था। किंचित् कालावधितक तो पू.गुरुदेव उस बालकको अतिशय मुग्ध निहारते रहे, फिर सहसा ही उससे प्रश्न कर बैठे – 'भाई, क्या तुम बता सकते हो, इस वनका नाम क्या है ?'

बालक अपने सुदीर्घ नेत्र मटकाता बोला – 'अरे ! तुम इतना ही नहीं जानते ? यह चित्रकूट है ।'

चित्रकूटका नाम सुनते ही पू.गुरुदेव अतिशय प्रफुल्लित हो उठे और 'चित्रकूट,''चित्रकूट,''चित्रकूट'नामकी आवृत्ति करने लगे। पू.गुरुदेवको इस 'चित्रकूट' नामावृत्तिमें इतना आनन्द आ रहा था कि वे इस परम धामके नाम-संकीर्त्तनसे अपनेको निवृत्त ही नहीं कर पा रहे थे।

इस नाम-संकीर्त्तनके साथ ही पू.गुरुदेवके सम्मुख दिव्य चित्रकूट प्रकट हो गया । यह त्रेताकालीन प्रकट-चित्रकूट उस कालका था जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भगवती सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ निवास किया

था। पू.गुरुदेवके सम्मुख धनुषाकार-प्रवाहित मन्दाकिनीकी ऐसी विलक्षण शोभा प्रकाशित हुई कि वे 'चित्रकूट' 'चित्रकूट' नाम-जप करते लगभग भाव-नर्त्तन ही कर उठे । उनके सम्मुख कामदगिरिकी भी ऐसी सुभग अलौकिक शोभा प्रकट हुई मानो वह दिव्य गोवर्धन ही हो। कामदगिरिसे यदि कोई कहीं गिरिराज पर्वतकी संतुलना करने लगे तो उसे दोनों ही एक दूसरे-से अतुलनीय सुन्दर एवं समृद्ध ही प्रतीत होंगे। उसे इन दोनों पर्वत-श्रृंखलाओंमें कोई किसीसे किंचित् भी न्यून दृष्टिगोचर नहीं होगा। पू.गुरुदेवको इसी वनमें भगवान् श्रीरामके भी सीताजीसहित दर्शन हुए और इस दर्शनके समय उन्हें यह भी अनुभव हो रहा था कि चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीराम और श्रीकृष्णके सौन्दर्यमें पूर्ण समानता है, कोई किसीसे किंचिन्मात्र भी न्यून नहीं। हाँ ! श्रीकृष्णके नेत्रोंमें अवश्य चंचलता अधिक है और श्रीरामजी गंभीर हैं । पू. गुरुदेवको यह भी अनुभव हुआ कि सचमुच ही जिस स्थानमें बहुतसे पदचिह्न हैं, यही वह स्थान है जहाँ श्रीरामजी भरतजी से मिले थे। पू.गुरुदेव कह रहे थे – इस मिलनमें सचमुच ही ऐसी हृदयद्रावक भाव-विह्वलता व्यक्त हुई थी कि चतुर्दिक्के पाषाण द्रवित हो उठे थे।

पू.गुरुदेवके सम्मुख त्रेताकालीन चित्रकूटकी शोभा बहुत कालतक व्यक्त होती रही। फिर क्रमशः वह दिव्यानुभूति तिरोहित हो गयी । पू. गुरुदेवने देखा कि वे कहीं भी विचरण नहीं कर रहे हैं, वरं मन्दाकिनीके तटपर विश्राम कर रहे हैं।

पू.गुरुदेवने अनेक अवसरोंपर अपनी इस विलक्षण अनुभूतिको लेखकको श्रवणगोचर करायी थी, उनके द्वारा जो भी सुनाया गया है, वही यथास्मृति यहाँ वर्णित किया गया है। यह लेखकका परम दुर्भाग्य था कि वह शरीरसे पू. गुरुदेवके साथ इस चित्रकूट-यात्रामें सम्मिलित नहीं था। जब पू.गुरुदेव तीर्थयात्रासे लौटकर आये और क्रमशः उसे अपनी तीर्थयात्राके अनुभव सुनाते थे, तब वह उनसे पृथक् रहनेके अपने दुर्भाग्यपर सचमुच ही अश्रु बहा रहा था।

गोवर्धन पर्वतके समान ही कामदगिरि पर्वतको भी परम पवित्र माना जाता है। इस पर्वतके शिखर पर कोई नहीं चढ़ता । इसकी मात्र परिक्रमा ही की जाती है। परिक्रमामें प्रथम स्थान मुखारविन्द पड़ता है। यह परम पवित्र माना जाता है। श्रीकामदगिरि पूर्णतया चिन्मय है, यह अनुभूति पू. गुरुदेवको

इसकी परिक्रमा करते समय मुखारविन्दपर पहुँचनेपर हुई। इसी प्रकार उन्हें लक्ष्मणपहाड़ीपर वनवासीवेषमें श्रीलक्ष्मणजीके भी दर्शन हुए।

(द्वितीय दिवसकी यात्रा)

पूर्वतः यह निवेदन किया जा चुका है कि तीर्थयात्राट्रेन मात्र दो दिवस ही करवी स्टेशनपर रुकी थी। वैसे साधारणतया यात्रियोंको कम-से- कम सात रात्रि तो चित्रकूट रहना ही चाहिये। यात्री प्रथम दिवस रेलवे स्टेशन करवीसे सीतापुर पहुँचकर राघवप्रयागमें स्नानकर कामद गिरिकी परिक्रमा करता है और सीतापुरके मन्दिरोंके दर्शन करता है, इतनेमें ही उसका दिन पूरा हो जाता है। दूसरे दिवस यदि वह कोटितीर्थ, सीतारसोई, हनुमानधारा होकर यदि सीतापुर लौटे तो उसे १२ मील अथवा लगभग बीस कि.मी.की यात्रा करनी पड़ जाती है। इसके उपरान्त भी केशवगढ, प्रमोदवन, जानकीकुण्ड, सिरसावन, स्फटिकाशिला, अनुसूयाजी, गुप्तगोदावरी, कैलासपर्वत, भरतकूप, रामशय्या आदि प्रमुख तीर्थ तो शेष रह जाते हैं। अतः तीर्थयात्रियोंको पूर्वतया निवेदन कर दिया गया था कि उन्हें मात्र दो दिवसोंमें जहाँ-जहाँ भी जाना हो, स्वतंत्रतासे अपने वाहनोंकी व्यवस्थाकर यात्रा करनी चाहिये।

पू.गुरुदेवके प्रथम दिवसके अनुभवका वर्णन तो किया ही जा चुका है, दूसरे दिवस पू.गुरुदेव जानकीकुण्ड गये। जानकीकुण्डमें जैसे ही पू.गुरुदेव आचमन करने लगे, उनका भावदृश्य परिवर्त्तित हो गया। उन्हें दिखने लगा –" यहाँ सभी वृक्ष सच्चिन्मय हैं। ये वृक्ष और इनके शाखासमूह इतने सुन्दर हैं कि ऐसा लगता है मानो ये मणिमय हों, और इनके शाखासमूह विविध रत्नमय हों। सभी शाखायें विलक्षण शोभासम्पन्न पल्लव-जालसे समाच्छादित हैं। पल्लव-राजिसे राजित सभी वृक्षावलियोंमें कुसुम-समूह प्रस्फुटित हो रहे हैं। ये कुसुम-निकर रत्न-राशिके समान झलमल-झलमल कर रहे हैं। सुन्दर कुसुम चतुर्दिक् भाँति-भाँतिकी सौरभको प्रवाहित कर रहे हैं जिससे भ्रमर-निकर झूम उठे हैं। पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि " अहा ! यही वह प्रमोदवन है, जो भगवती सीताजीको अतिशय प्रिय था। पौराणिक वर्णन है कि भगवान् शंकर भी पार्वतीजीके सहित यहाँ विहार करते थे। प्रमोदवनके सभी वृक्ष इतने सुन्दर और चिन्मय थे कि इन्हें बड़े ध्यानसे देखनेपर ही कोई पहचान पाता

था। इनके पत्रोंकी आकृति, स्कन्ध-विन्यास इतना सुन्दर और सजीव था कि कोई गंभीर विचार करके भले ही जान ले कि यह अमुक तरु-श्रेंणी है अन्यथा उन्हें पहचानना कठिन था। शाल, तमाल, अश्वत्थ, बकुल, नारिकेल – ये सभी वृक्ष प्राकृत मायाराज्यके थे ही नहीं। वे सभी वृक्ष थे भगवान् श्रीरामचन्द्रके चिदानन्दमय चित्रकूटधामके, जो उस समय पू.गुरुदेवके नेत्रोंमें, मनमें, व्यक्त हो उठा था।

पू.गुरुदेवको अनुभव हो रहा था कि विश्व-प्रपंचके जिस भू-भागपर यह चित्रकूट व्यक्त हो रहा है , यहाँ यह पुरी अनादि कालसे है और अनन्तकालतक रहेगी। प्रपंचमें जिस समय भगवान् रामकी चिदानन्दमयी लीलाका प्रकाश होता है तथा क्रमशः लीलाका प्रकाश करते हुए जब वे चित्रकूटके रंगमञ्चका स्पर्श करते हैं तब तिरोहित हुआ यह चित्रकूट पुनः आविर्भूत हो जाता है और जब भगवान्की लीलाका अन्तर्धान हो जाता है, तब यह चित्रकूट धाम भी अन्तर्हित हो जाता है। पू.गुरुदेव जब प्रमोदवन और जानकीकुण्डकी ओर मोटरगाड़ीसे आये थे तो उनके साथ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीवल्लभलालजीगोस्वामी और अन्य लोग भी थे। पू.गुरुदेव मन-ही-मन यह भी अनुभव कर रहे थे कि यह आविर्भाव -तिरोभाव भी उनके लिये ही होता है, जिनके नेत्रोंमें त्रिगुणमयी माया भरी है। जिनकी आँखोंमें श्रीरामचन्द्र-नखचन्द्रकी चंद्रिका झलमला रही है, उनके लिये तो यह चित्रकूट सदा वर्तमान ही रहता है। चित्रकूट उनके नेत्रोंमें नित्य भरा रहता है। अस्तु, आज भी पू.गुरुदेवके नेत्रोंमें चित्रकूटका विलक्षणरूपसे आविर्भाव हो रहा था। पू.गुरुदेव प्रमोदवनसे जानकीकुण्ड आये। जानकीकुण्डकी शोभा देखकर तो पू.गुरुदेव अतिशय उन्मत्त हुए-से बोल उठे –'गोस्वामीजी ! देखिये ! जानकीकुण्डकी अप्रतिम शोभा ! पू.गुरुदेव तो वर्षोंसे मौन थे और मात्र नौ मास पश्चात् काष्ठमौन लेनेवाले थे, उन्हें इस प्रकार मुखर देख गोस्वामी चिम्मनलालजी चकित हो उठे। पू.गुरुदेव उच्चारण करते जा रहे थे। –

"अहा ! क्या कहना है ! सुपक्व सुमधुर फल-भारसे अवनत हुई राशि-राशि वृक्षावली, रंग-बिरंगे सुरभित कुसुमोंका आभरण धारणकर तरु-श्रेणीको वेष्टित किये लता-वल्लरियाँ, इनपर चित्र-विचित्र बिहंगमोंका कल गान, हरित् तृणराजि, क्षुप्-वीरुधोंका अम्बार और सर्वत्र मन्द-मन्द मन्थर पवनका सुशीतल

स्पर्श – कहीं इनकी तुलना भी संभव है ?" जानकीकुण्डकी शोभा दूरसे ही निहारतेहुए पू.गुरुदेव आविष्ट-से बोलते जा रहे थे।

पू.गुरुदेवको जानकीकुण्ड पहुँचते ही स्नान करती जगज्जननी सीताजीके दर्शन हुए। पू.गुरुदेव भावशरीरमें उस समय मञ्जुश्यामा (अनंगमञ्जरी)भावमें थे। पू.गुरुदेव इस दर्शनका वर्णन करते समय कह रहे थे कि जगज्जननी जानकी और भगवती श्रीराधा दो हैं ही नहीं। एक ही रूप-रंग, शील दोनोंका है। मात्र नाम और लीला ही भिन्न है। वे कह रहे थे कि नयन चार होते ही जानकीजीने उन्हें ऐसा ही प्यार दिया जैसा भगवती श्रीराधारानी उन्हें सदासे देती आयी हैं । समग्र जीवनमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको दो वार श्रीजानकीजीने दर्शन दिये थे। प्रथम वार, जानकीकुण्ड चित्रकूटमें एवं दूसरी वार इसी तीर्थयात्राट्रेनसे जब वे अयोध्या पहुँचे थे। अयोध्याधाममें हुए श्रीजानकीजीके दर्शनोंकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे।

परम पवित्र चित्रकूटधामने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबापर जैसी कृपा की उससे उनका मन पूर्णतया कृतज्ञतासे भर गया था। तत्वतः तो भगवान् रघुकुलभूषण श्रीरामजीकी विहारभूमि चित्रकूट और वृन्दावन दो तो हैं ही नहीं। मात्र लीलार्थ ही वे पृथक् कालमें पृथक् रूप धारणकर दो भिन्न स्थानोंमें स्थित हैं। संधिनी शक्तिकी परिणति होनेसे धामकी सच्चिदानन्दमयता तो दोनोंमें समान ही थी। अतः यह कृपा तो स्वाभाविक होनी ही थी।

प्रयागमें तीर्थयात्रा-ट्रेन

तीर्थयात्राट्रेन करवी स्टेशनसे प्रस्थान करके ज्योंही प्रयाग स्टेशन पहुँची श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके नेतृत्वमें विशाल जनसमूह श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतार्थ उमड़ पड़ा था। इस जनसमुदायमें व्यक्ति-व्यक्तिके मनोगत भावोंमें श्रद्धा हिलोरें ले रही थी। इस भीड़में बहुत बड़ी संख्यामें मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, सिख और पारसी भी थे। इसका कारण श्रीपोद्दार महाराजका सर्व-धर्म-सम व्यक्तित्व था। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही व्यक्तित्वके धनी थे। जहाँ परतन्त्र भारतमें उनसे अंग्रेज शासनाधिकारी आत्मीयता रखते थे, वहीं प्रमुखतम राष्ट्रीयनेता महात्मागाँधी, पं.जवाहरलाल नेहरु आदि भी उनके पारिवारिक सदस्य-सरीखे थे। महात्मा गाँधी तो जब भी बम्बई आते श्रीपोद्दारजीकी दादीजीसे मिलने अवश्य आते। रेहाना तय्यबजी जैसी पारसी महिलाएँ उनकी राखीबन्द बहिनें थीं, तो अंसारीजी एवं स्वयं श्रीमोहम्मद अली जिन्ना भी उनके प्रति समादरका भाव रखते थे।

''श्रीपोद्दार महाराज योगसिद्ध समाधिनिष्ठ पुरुष हैं, वे वर्णाश्रम-ार्मावलम्बी शुद्ध सनातनी निष्ठा रखनेवाले हैं। वे महादानी हैं, ब्रह्मण्य हैं, भक्ति-श्रद्धासम्पन्न हैं, परम विनयी हैं, सर्वजनके परम आत्मीय हैं; सर्व-ज्वरहारी हैं, जो भी कष्टमें, विपत्तिमें है उसकी सेवाको सदैव तत्पर रहते हैं; आप्तकाम हैं, लोकसंग्रहके हेतु निरन्तर कर्म करते हैं, दीन-दुर्बलोंके बन्धु हैं, उनकी आयुका क्षण-क्षण धर्मसंस्थापनार्थ ही व्यतीत हो रहा है। गोसेवा, अकालपीड़ितों और बाढपीड़ितोंके सहायतार्थ उनके पास न जाने कहाँ-कहाँसे धनका भण्डार आ जाता है। अलौकिक अद्भुतकर्मा हैं। शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् नारायणके उन्हें अनेक वार साक्षात् दर्शन हुए हैं, नारद-अंगिरादि ऋषि उनसे आज भी इस घोर कलिकालमें मिलनेके लिये आते हैं; अन्यान्य सूक्ष्म लोकोंमें उनकी गति है, निपुण लेखक, कवि एवं साहित्यप्रेमी हैं । विद्वान् हैं, बहुपठित हैं, शरणागतवत्सल हैं, विनोदी हैं, सदा हँसमुख रहते हैं। भगवान् रसराज श्रीकृष्णके रसोपासक हैं, सांख्य, योग, वेदान्त, उपासना, समाजनीति, यहाँतक कि राजनीतितकके सुविज्ञ पण्डित हैं; ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसंन्यास, नैष्कर्म्य, सर्व-धर्मसंन्यास, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सभी मतोंके मर्मज्ञ हैं, श्रीमद्भगवद्गीताके तो अक्षर-अक्षरके भाव वेद् हैं'' – यह

सब प्रख्याति सुनकर और इसपर पूर्णतया विश्वास करके हजारों नरनारी उनके दर्शनार्थ प्रयाग स्टेशनपर समुपस्थित थे।

अधिकांश हिन्दूधर्मावलम्बी जनता तो श्रीपोद्दारजीके रूपमें उस व्यक्तित्वको अपनी आँखोंसे देखने आयी थी, जिसे मानो आप मेरे सामने बैठे हों और मैं आपसे बात कर रहा हूँ, इस प्रकार भगवान्‌के दर्शन होते हैं। असंख्य लोगोंके मनमें तो अपने चर्म-चक्षुओंसे ऐसे महापुरुषको देखकर मात्र कृतकृत्य होनेका भाव ही सर्वोपरि था।

किस-किसके भावोंकी पयस्विनी श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिन्धुसे मिलने किस वेगसे उमड़ रही है, उसका कहाँ कब पूर्ण संगम होगा, किसके भाव-तीर्थपर आज पोद्दार महाराजका स्नान होगा, इसकी पूरी सूची किसी मानवके पास होनी तो संभव ही नहीं है। हाँ, सर्वविधात्री योगमाया अवश्य इस सबकी सूची अपने पास रखे थी। उसने अपनी योग्यतानुसार इतने सारे जनसमुदायको परमार्थ-पथका सर्वोत्तम बीजदान देनेकी योजना तो बना ही डाली। जय हो ! अचिन्त्य लीला-महाशक्तिकी !

ठीक योजनानुसार ट्रेनके प्रयाग स्टेशन पहुँचते-पहुँचते जहाँ श्रीपोद्दार महाराज तो पूर्णतया बहिर्मुख थे, पू.गुरुदेव अन्तर्मुख होते चले गये और जब ट्रेन प्रयाग पहुँची तबतक तो उनका समग्र दृश्य ही श्रीकृष्णमय बन गया था। इसमें आश्चर्य ही क्या था ? अचिन्त्य लीलाविहारी ब्रजेन्द्रनन्दनका अतिशय प्रीतिभरा कैशोर लीलाविहार प्रत्यक्ष हो जानेपर किसे आनन्दमुग्ध नहीं कर देता ? बस, इस रस-मन्दाकिनीकी धारा उमड़नी चाहिये , उससे कोई भाग्यवान् हृदय संस्पर्शित भर होना चाहिये, फिर उसे आत्मसात् कर इस धाराकी उर्मियोंको उसे अपनेमें डुबा लेनेमें क्षण भी तो नहीं लगता। हाँ, रजोगुणी लोगोंका ऐसा वर्ग अवश्य है, जिनकी आँखें प्रपञ्चमें इतनी आपाततः डूबी रहती हैं, कि वे मिथ्या मोहा-न्धकारमें डूबे इस ओर लव मात्रके लिये भी उन्मुख नहीं होते। उनके सामने किसी सन्तके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रका कितना ही सुखमय विहार भले ही चल रहा हो उनका इन संस्कारोंको आत्मसात् करनेका मन ही नहीं होता। उनके हृदयका तो रुझान अपने मोहमय संसारमें ही होता रहता है। अतः वे ऐसे अभागे हैं जिनके लिये विषयसुख देहोपभोग ही परम सत्य है, आत्मसुख, ब्रह्मानन्द और लीलासुखसिन्धु जिनके मन-मानसमें प्रवेश ही नहीं पा सकता ।

प्रयाग स्टेशनमें श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतमें ऐसे बहिर्मुख लोगोंकी ही बृहद् भीड़ खड़ी थी। इस जनसमुदायमें यह भावना तो अवश्य थी कि कोई ऐसा शुभ क्षण, कृपा-क्षण आ जाय कि हमारा जीवन विषयान्धतासे हटकर परमात्मसुखकी ओर मुड़ जाय, किन्तु उसके लिये किसी भी प्रकारके त्यागके लिये वे सर्वथा ही तत्पर नहीं थे। उनका पूरे-का-पूरा संसार किसी प्रकार बना रहे, उनकी शरीरसुख-सुविधा वैसी-की-वैसी नित्य सुरक्षित और अभिवृद्ध होती रहे, इस सबके योगक्षेममें उन्हें किंचित् भी हानि नहीं सहनी पड़े और किसी कृपासे, चमत्कारसे उनके अघका अन्त भी हो जाय और भगवद्दर्शन भी हो जावें, उनकी यही भीरु माँग थी ।

पू.गुरुदेवके द्वारा इस भीरु-भीड़को अति शुभ परमार्थके बीज प्रदान कराना ही भगवती योगमायाका उस समय प्रयोज्य था, और इसीलिये उन्होंने पू.गुरुदेवमें अलौकिक भावसिन्धुका उद्वेलन कराया था।

पू.गुरुदेवके सम्मुख तो अपने अनन्त ऐश्वर्यपर किशोरावेशजनित प्रणय-भावोंकी चादर डाले, उसे आवृत किये परम मनोहर ब्रजेन्द्रनन्दन माधुर्यलीला-विहारके सुख-सिन्धुमें सन्तरण कर रहे थे। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो इस मायावी प्राकृत तटसे अत्यन्त सुदूर कहाँ-से-कहाँ महाभाव-रससिन्धुमें बहते जा रहे थे। किन्तु भगवती योगमाया लीला-विधातृ महाशक्तिको तो इस महाभाव-प्रवहनसे ही अपना परम मंगल प्रयोजन सिद्ध करना था। अतः ज्योंही प्रयाग स्टेशनपर रेल रुकी, श्रीपोद्दार महाराजने अपने ही पास कम्पार्टमेण्टमें प्रीतिके सर्वोच्च स्तर – महाभावके दुकूल द्वारा अपनेको पूर्णतया आवृत किये, मदहोश राधाबाबाको झकझोरकर उस दुकूलको तनिक-सा हटा लिया। "बाबा! ओ बाबा !! देखिये न ! कितना जनसमूह उमड़ उठा है ! देखिये न ! श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी और कितना साधुसमाज है ! श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन भी आये हैं ! आप अब तनिक बहिर्मुख तो हो जाइये !" श्रीपोद्दार महाराज तो मानो छोटे-से शिशु हों, इस प्रकार एक बाल-कौतूहलसे वे पू. राधाबाबाको झकझोर उठे।

श्रीपोद्दार महाराजमें भी तो सर्वचित्तहारी , सर्वभूत-हृत्स्थित श्रीहरि ही मात्र नाम और रूपका पञ्चभूतात्मक कलेवर ओढे क्रियाशील हो रहे थे। वे सोच रहे थे–"सर्व विश्वका प्रतिपालक तो मैं ही हूँ। यह अनन्त पारावारविहीन मेरा ही मायाप्रवाह मेरे ही जनोंको परम शुभ भक्तिपथसे हटाकर मेरे संरक्षणसे

बाहरकर जन्म-मृत्युकी ज्वालामें झौंक रहा है। अतः निश्चय ही इस समय मेरे स्वागतमें आये इस सारे जनसमुदाय-रूप जीवोंको मुझे कृपा-उर्मियोंसे परिस्नात कराना ही है।

ओह ! दैवकी विचित्र लीला है ! इन हजारों जीवोंके प्रारब्धकी कैसी विचित्र शुभ परिणति है ! क्या इसीलिये दैवने यह तीर्थयात्रा आयोजित की थी ? श्रीपोद्दार महाराज और गीताप्रेसकी प्रख्याति सुनकर प्रत्येक स्टेशनपर जहाँ-जहाँ यह यात्राट्रेन रुकेगी, असंख्य जनसमुदाय कौतूहलवश श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतार्थ उमड़ेगा ही। और जो मात्र कृपा-संकल्प हैं, उन महाकृपासिन्धुमें कृपा-उद्वेलन तो होगा ही ! और उस कृपा-उद्वेलनके होनेपर फिर चाहे सम्मुख पड़े जीवोंकी माया-यवनिकाजन्य अघराशि कितनी ही गहन क्यों न हो, वह तो प्रवाहित हो ही उठेगी और तटपर समुपस्थित कृपार्थी स्वाभाविक ही निहाल होगा ही। वस्तुतः सच्चे भगवत्प्राप्त सिद्ध सन्तोंकी यह भी ऐश्वर्यसम्पुटित लीलाकी एक लहरी मात्र ही थी। अन्यथा जो सर्वसुहृद् हैं, रोम-रोमसे दयालु हैं, उनके लिये किसी भी सम्मुख आये जीवको कृपा-स्नान करानेमें कैसी उलझन है ? जब स्वयं भगवद्दृग सन्त ही उपाय निर्धारण करने चलें और उपाय नहीं मिले, यह कैसे संभव है ? बस, अचिन्त्य लीला-महाशक्तिने लीलाक्रम निर्धारित कर दिया। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा के हृदय-वृन्दावनमें नित्य विहार करनेवाले ब्रजेन्द्रनन्दन उस क्रमकी ओर देख लेते हैं, उन्हें अब इस सब जनसमुदायके रूपमें चाहे एक क्षणके लिये ही सही, व्यक्त होना है, यही इस जनसमुदायके कल्याणका उपाय है।

निम्न मुख, निम्न दृष्टि किये श्रीराधाबाबाकी दृष्टि श्रीपोद्दार महाराजके संकेतसे जनसमुदायपर पड़ती है। अन्तरिक्षमें देवसमाज सिहर उठता है। देवसमाज तो सृष्टिप्रवाहको बनाये रखना चाहता है। इन सर्वव्यापी इन्द्रियोंके बहिर्मुख रहनेसे ही तो इन देवगणोंको विषय- सुखोपभोग प्राप्त होता है। अब तो इतने जनसमुदायका परम भगवद्भक्त होना सुनिश्चित होने जा रहा है। अब ये असंख्य जीव भविष्यमें विषयपराङ्मुख हो भगवन्मुखी सन्तहृदय हो जावेंगे, इस आशंकासे अमरमण्डलका कम्पायमान होना स्वाभाविक ही था । किन्तु भीतरसे नहीं चाहते हुए भी उन्हें सन्तकृपाकी जय-जयकार तो करनी ही थी। पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजको माल्यार्पण करते उमड़े जनसमुदायपर जैसे ही दृष्टि उठायी, वहाँसे जनसमुदायका अस्तित्व ही लुप्त हो गया था।